विषय सूची

विषय		पृष्ठ

हमारे प्रान्त

शासन की दृष्टि से हमारा भारतवर्ष मुख्य दो भागों में वंटा हुआ है। (१) ब्रिटिश भारत—जहाँ ब्रिटिश सरकार की सत्ता है और (२) देशी रियासतें—जहाँ भारत के देशी नरेशों की सीमित सत्ता है। क्षेत्रफल में ब्रिटिश भारत का विस्तार देशी रियासतों से लगभग ड्योढ़ा है और इस क्षेत्र का शासन देशी रियासतों की अपेक्षा अधिक प्रजातंत्रवादी है। यहाँ की जनता भी अधिक शिक्षित है और उसे देशी रियासतों की जनता की अपेक्षा अधिक सामाजिक वा राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं। प्रजातंत्रात्मक शासन का प्रारम्भ यहाँ बहुत पहिले से प्रारम्भ हो गया है और १९३५ के एक्ट के अनुसार प्रान्तों को एक प्रकार का स्वतन्त्र शासन मिल चुका है। देशी रियासतों में अभी भी निरंकुश शासकों का बोलबाला है और वहाँ की जनता को राजनैतिक मामलों में प्रायः कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं है। १९३५ के एक्ट के पूर्व देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत का शासन पूर्णतया अलग-अलग था परन्तु संघ-शासन की योजना में यह पहला प्रयत्न किया गया कि

भारतीय संघ में ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि दोनों भाग लें, परन्तु यह विषय केन्द्रीय शासन से संबंध रखता है और हमारा विषय केवल प्रान्तीय शासन है। अतएव हम अपना अध्ययन केवल भारत के ब्रिटिश अधीनस्थ भागों तक ही सीमित रखेंगे।

१६३५ के एक्ट द्वारा ब्रिटिश भारत ११ प्रान्त और ६ चीफ़ कमिश्नरियों में विभाजित है। १६३५ के पूर्व यहाँ केवल ६ प्रान्त थे—मद्रास, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बम्बई, बिहार, मध्यप्रान्त, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, पंजाब और आसाम। १६३५ के एक्ट द्वारा सिन्ध और उड़ीसा, जो पहले बंबई और बिहार के अन्तर्गत थे नये प्रान्त बना दिये गए हैं। चीफ़ कमिश्नरियाँ पहले ५ थीं—दिल्ली, अजमेर, कुर्ग, अन्दमान नीकोबार और बलोचिस्तान। १६३५ के एक्ट द्वारा एक नई चीफ़ कमिश्नरी पंथ पिप्लोदा का निर्माण हुआ है।

भारतवर्ष के प्रान्तों का निर्माण किसी राजनैतिक या वैज्ञानिक सिद्धान्त पर नहीं हुआ है। यह विभाजन अधिकतर ऐतिहासिक और सैनिक परिस्थितियों के कारण हुआ है और इस कारण लोगों में प्रान्तों की आधुनिक सीमाओं के प्रति काफ़ी असन्तोष है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार की दृष्टि से अपनी तीन शाखाएं सूरत, मद्रास और बंगाल में खोली थीं। ये तीनों शाखाएं अपने शासन में एक दूसरे से पूर्ण स्वतंत्र थीं और अपने कार्यों के लिए कम्पनी के डाइरेक्टरों को ही जिम्मेवार थीं। धीरे-धीरे यहाँ की फूट से लाभ उठाकर, पारस्परिक झगड़े कराकर, और अपनी सेना की सहायता से इन व्यापारी शाखाओं ने अपने प्रभुत्व का प्रसार प्रारंभ कर दिया और थोड़े ही काल में ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापारी मंडल न रहकर देश के एक बड़े भाग का शासक बन बैठी। अब भी ये तीनों शाखाएं एक दूसरे से स्वतन्त्र थीं। इनका शासन कम्पनी के १२ से १६ पुराने नौकरों की एक कौंसिल द्वारा होता था और उसका सभापति गवर्नर रहता था। सारा शासन इस कौंसिल के बहुमत द्वारा होता था। परंतु बंगाल में जब पहली बार क्लाइव को इस बड़ी संस्था के शासन से असन्तोष हुआ तो उसने शासन-कार्य के लिए कुछ चुने हुए सदस्यों की एक छोटी संस्था बनाई।

देश की आन्तरिक परिस्थिति बड़ी ख़राब थी। आये दिन एक न एक युद्ध लगा ही रहता था और इन युद्धों के खर्चों में कम्पनी का कर्ज़ बढ़ता जा रहा था। इंग्लेण्ड लौटे हुए कम्पनी के नौकरों की अपार सम्पत्ति देखकर भी यह आवश्यक समझा गया कि प्रान्त के शासन में कुछ न कुछ सुधार आवश्यक है। और इस कारण जब कम्पनी ने पार्लियामेंट से रुपया उधार लेने की चेष्टा की तो पार्लियामेंट ने १७७३ के रेग्युलेटिंग एक्ट द्वारा भारतीय शासन में सुधार करने का अवसर प्राप्त किया। १७६५ में दीवानी का अधिकार पाकर बंगाल अहाता अन्य अहातों से अधिक शक्तिशाली बन गया था। अतएव यह निश्चय किया गया कि बंगाल का गवर्नर गवर्नर-जनरल बना दिया जावे और उसकी कौंसिल को बम्बई और मद्रास के अहातों के शासन पर निरीक्षण का अधिकार दे दिया जावे।

शासन में अभी और भी सुधार की आवश्यकता थी। गवर्नर जनरल को अपने कौंसिल के सदस्यों से कई बार मुठभेड़ करनी पड़ती थी और उसकी इच्छा के विरुद्ध भी मद्रास और बंबई की सरकार स्वतंत्र रूप से युद्ध घोषित कर दिया करती थी। वारेन हेस्टिंग्ज़ का शासन-काल इन्हीं कठिनाइयों से भरा पड़ा है। सबसे मज़ेदार बात यह है कि उस काल की इन अहातों की स्वतंत्रता की छाया गवर्मेंट आफ़ इण्डिया एक्ट १६१५ के ४५ (२) सेक्शन तक में देख पड़ती है। जिसकी भाषा से यह आभास होता है कि प्रान्तीय सरकारों को युद्ध और संधि करने का अब भी अधिकार है। संभव है इसी पुरानी परंपरा के कारण आज भी अहातों की सरकार को अन्य प्रान्तों से अधिक अधिकार प्राप्त हैं और वे अब भी स्वतंत्र रूप से भारत सचिव को अपनी डाक सीधी भेज सकते हैं और यहाँ के गवर्नर इंडिया सिविल सर्विस से न बढ़कर सीधे इंगलैंड से नियुक्त किये जाते हैं।

भूमि विस्तार के साथ ही साथ धीरे धीरे बंगाल के गवर्नर जनरल का निरीक्षण अधिकार बम्बई और मद्रास पर भी बढ़ता गया और आवागमन के सुभीतों ने बम्बई और मद्रास के अहातों को बंगाल के अधीन कर दिया। १७६६ में टीपू सुल्तान की हार के बाद मद्रास अहाते की सीमा निर्धारित हो

गई। यह सीमा आज तक प्रायः वही पुरानी सीमा है। और १८१८ में तृतीय मरहठा युद्ध के पश्चात् बम्बई अहाते की वही सीमा बन गई जो हमें आज भी नक़्शे में देखने को मिलती है। बंगाल अहाते की सीमा में क्रमशः विकास होता गया। मरहठों के ऊपर विजयी होकर लार्ड लेक ने आगरे प्रान्त का बहुत-सा हिस्सा बंगाल अहाते में मिला लिया और धीरे-धीरे बंगाल अहाते की सीमा सुरक्षित करने के लिए ज्यों-ज्यों नये प्रान्त जीते गए वे सभी बंगाल अहाते के भाग बनते गये और इस तरह थोड़े ही समय में बंगाल अहाते का विस्तार पूर्व में आसाम और दक्षिणी ब्रह्मा तक, उत्तर में नेपाल की तराई तक, पश्चिम में अवध, झाँसी और पंजाब तक तथा दक्षिण में नागपुर तक हो गया। १८४२ में सिंध का भाग नेपियर द्वारा विजित होकर बंबई अहाते में जोड़ दिया गया। सिंध का यह भू-भाग बंबई से अपनी भाषा और संस्कृति में बिलकुल भिन्न है और इसको शासित करने के लिए जलमार्ग की ही सहायता लेनी पड़ती थी; परन्तु बंबई के समीप होने के कारण यह भाग उसी प्रान्त द्वारा ही शासित हो सकता था (पंजाब उस काल में ब्रिटिश भारत का भाग न था)। और इस कारण शासन-सुविधा की दृष्टि से सिंध बम्बई प्रान्त में ही मिला दिया गया। लोगों की इच्छा की कुछ भी परवाह न की गई।

बंगाल का गवर्नर जनरल अब भी ब्रिटिश विजित भागों का सर्वोच्च अधिकारी था और उसे बंगाल के विस्तृत अहाते के शासन के साथ ही साथ बम्बई और मद्रास के शासन पर निरीक्षण रखना पड़ता था। बंगाल के गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल के लिए इतना शासन-भार बहुत था और इस कारण एक चौथे अहाते के निर्माण की योजना प्रारंभ हो गई। परंतु इस चौथे अहाते का जीवन क्षणिक था। १८३६ में पश्चिमोत्तर प्रान्त की नींव पड़ी जिसका शासक एक लेफ्टिनेंट गवर्नर रक्खा गया। १८५४ में बंगाल प्रान्त के लिए एक लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त कर दिया गया और गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को बंगाल के शासन से मुक्त कर दिया गया। इसी वर्ष गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को यह अधिकार भी दे

दिया गया कि वह उन भागों के शासनार्थ जो लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रान्तों के अंतर्गत न हों, चीफ़ कमिश्नर नियुक्त कर सकता है। भारतवर्ष में उस वर्ष से कई चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त बनाये गए। १८३३ से ही बंगाल का गवर्नर-जनरल भारत का गवर्नर-जनरल हो गया था और वह उस काल से ही समस्त भारत के शासन का पूर्ण-सत्ताधिकारी और सर्वोच्चाधिकारी बन गया था।

पंजाब का प्रान्त १८४९ में ब्रिटिश भू-भाग में मिलाया गया। पहले तो इसका शासन एक बोर्ड के हाथ में था; परन्तु बाद में वहाँ एक चीफ़ कमिश्नर रख दिया गया। १८५७ के ग़दर के बाद दिल्ली का भाग पंजाब में मिला दिया गया और पंजाब लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त हो गया। १८५६ में अवध जीता गया। पहले तो वहाँ चीफ़ कमिश्नर रखा गया परन्तु १८७७ में वह पश्चिमोत्तर प्रान्त का भाग हो गया जो इस समय लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त था। लार्ड कर्ज़न के समय में इस प्रान्त का नाम आगरा और अवध का संयुक्त प्रान्त रखा गया। १८६१ में पश्चिमी-उत्तर प्रान्त का कुछ भाग लेकर और कुछ "लौटे हुए भू-भाग" (lapsed territories) को मिला कर मध्य प्रान्त का जन्म हुआ। १९०३ में बरार का प्रान्त भी मध्य प्रान्त में मिला दिया गया। आसाम तो १८२६ में ही जीतकर बंगाल प्रान्त का भाग हो गया था, परन्तु १८७४ में वह एक चीफ़ कमिश्नर का प्रान्त बना दिया गया। १९०५ में बंगाल का प्रसिद्ध विच्छेद हुआ जिसमें आसाम और बंगाल का पूर्वी भाग 'पूर्वी बंगाल और आसाम' का लेफ्टिनेंट गवर्नर प्रान्त और पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा मिलाकर 'पश्चिमी बंगाल' नामक लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त हो गया। इस विच्छेद ने देश-व्यापी आन्दोलन शुरू कर दिया इस कारण १९१२ में इन दो प्रान्तों के तीन विभाग किये गये। (१) आसाम—चीफ़ कमिश्नर का प्रान्त, (२) बंगाल अहाता और (३) बिहार वा उड़ीसा—लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त। सुरक्षा के विचार से १९०१ में पंजाब के कुछ ज़िलों को अलग कर पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त का निर्माण हुआ। १८८७ में ब्रिटिश बिलोचिस्तान का भाग चीफ़ कमिश्नर के आधीन रख दिया गया था। और १८१८ और १८३४ में अजमेर और कुर्ग ब्रिटिश राज्य के आधीन होने

पर क्रमशः राजपूताने के पोलिटिकल एजेंट और मैसूर के रेज़ीडेंट द्वारा शासित होने लगे। दिल्ली १९११ के दरबार के बाद पंजाब से अलग कर दिया गया और वह चीफ़ कमिश्नर का प्रान्त बना दिया गया। इस प्रकार राजनैतिक, शासन और सैनिक सुविधाओं का ध्यान रखकर हमारे ब्रिटिश भारत का नक़शा तैयार हुआ इसमें जनता की रुचि और इच्छा का कोई भी हाथ न था।

१९१९ के सुधार के पूर्व भारतवर्ष पाँच प्रकार के प्रान्तों में बंटा हुआ था

(१) बम्बई, बंगाल और मद्रास के अहाते जो गवर्नर और तीन सदस्यों की कौंसिल द्वारा शासित होते थे। विशेष परिस्थिति में तो गवर्नर इस कौंसिल के मत को ठुकरा सकता था, परन्तु साधारणतः शासन का कार्य कौंसिल के बहुमत से होता था। इन अहातों को केवल आर्थिक विषय छोड़कर अन्य विषयों पर भारत सचिव से सीधे पत्र-व्यवहार करने का अधिकार था और वे भारत सरकार की आज्ञा के विरुद्ध भारत सचिव को अपील भी कर सकते थे। अपने अहातों के प्रमुख पदों पर नियुक्ति करने का भी अधिकार उन्हें था और जंगल या आय के विषयों के निरीक्षण में भारतीय सरकार का अधिकार इन अहातों पर अन्य प्रान्तों की अपेक्षा कम था।

(२) लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रान्त पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा या ब्रह्मा के प्रान्त थे। बिहार का शासन लेफ्टिनेंट गवर्नर और उसकी कौंसिल द्वारा होता था। परन्तु अन्य प्रान्तों के लिए केवल लेफ्टिनेंट गवर्नर ही था। संयुक्त प्रान्त के शासन का भार एक आदमी के लिए बहुत था इस कारण यहाँ के लिए भी एक कौंसिल की योजना की गई, जो १९१५ में हाउस आफ लार्ड्स द्वारा अस्वीकृत हो गई।

(३) गवर्नर और लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रान्तों के अलावा सभी ब्रिटिश इलाके गवर्नर जनरल के आधीन थे और एक प्रकार से वही इनके लिए शासन-संबंधी आज्ञाएं और सलाह दिया करता था। चीफ़ कमिश्नर गवर्नर-जनरल के प्रतिनिधि रूप में ही काम करता था और उसके अधिकार गवर्नर-जनरल शासन-सुविधा के अनुसार घटा-बढ़ा सकता था, परन्तु फिर भी इन

प्रान्तों की शासन सम्बन्धी हैसियत कुछ भिन्न-भिन्न थी।

मध्य प्रान्त और आसाम यद्यपि चीफ़ कमिश्नर के मातहत थ; परन्तु इनकी हैसियत लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रान्तों के समान ही थी। आसाम और मध्यप्रान्त में धारा-सभाओं के बनने पर तो इन प्रान्तों और लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रान्तों में प्रायः कुछ भी अन्तर न रह गया।

(४) ब्रिटिश बलोचिस्तान और सीमा प्रान्त भी गवर्नर जनरल के एजेंट चीफ़ कमिश्नर द्वारा शासित होते थे परन्तु इन प्रान्तों का शासन आदिम जाति के भागों से अधिक संबंधित होने के कारण गवर्नर जनरल के अधिक आधीन था और इनका शासन विदेशी वा राजनैतिक विभाग द्वारा होता था क्योंकि ऐसा होना एक तो इनकी राजनैतिक स्थिति के कारण आवश्यक था, दूसरे ये प्रान्त अन्य प्रान्तों की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से अच्छे नहीं कहे जा सकते थे। उन्हें केन्द्रीय सरकार की सहायता पर अधिक अवलंबित होना पड़ता था।

(५) अजमेर, कुर्ग, दिल्ली और अन्दमान पर भारतीय सरकार का शासन अधिक प्रत्यक्ष था और ये भारत सरकार के गृह-विभाग द्वारा शासित होते थे।

१६१६ के सुधार के बाद बलोचिस्तान वा ५ वीं प्रकार की चीफ़ कमिश्नरियों को छोड़ अन्य प्रान्तों के शासन का अन्तर मिटा दिया गया और वे सब गवर्नर के प्रान्त कहलाये जाने लगे। फिर भी इन प्रान्तों और अहातों के प्रान्तों में शासन की दृष्टि से कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहा। १६३५ के एक्ट के द्वारा उड़ीसा और सिंध दो नये प्रान्त बना दिये गये और साथ ही एक नई चीफ़ कमिश्नरी पंथ पिप्लोदा भी कायम की गई।

इस प्रकार शासन की सुविधा को ध्यान में रखकर ही इन प्रान्तों की सीमा बनी है। १६३५ के एक्ट द्वारा प्रान्तों को स्वायत्त शासन मिल चुका है, परन्तु उनकी सीमा वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर ठीक करने का प्रयत्न नहीं किया गया। १६३० से भारत के लिये संघ सरकार की जो चर्चा चल रही है वह सर्वमान्य है और भारत के सभी राजनैतिक वर्ग भारत के लिये संघात्मक-सरकार ही हितकर समझते हैं अतएव हमारा भावी शासन-विधान संघात्मक

ही होगा। परन्तु संघ-सरकार की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्त अपने को एक संगठित इकाई समझे। भारतवर्ष में यह संभव नहीं हो सका है। १९३० में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "हम आधुनिक प्रान्तों को किसी भी तरह उत्तरदायी सरकार की आदर्श इकाई नहीं मान सकते।" उनके विचार से ये प्रान्त "शासन के वे बहुत से क्षेत्र हैं जो विजय के फलस्वरूप, पुराने शासकों के हटाने पर, या शासन विजय के कारण बिना किसी सिद्धान्त के पैदा हो गये हैं, इनमें से कोई भी इस विचार से नहीं बनाया गया है कि वह संघात्मक राज्य की स्वतः शासित इकाई के उपयुक्त हो।" १९१७ के कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक ने भी यही कहा था कि सच्चे प्रान्तीय स्वायत्त शासन के लिए भाषा की दृष्टि से प्रान्तों का विभाजन आवश्यक है (Linguistic provinces are an essential condition pre-requisite to real Provincial Autonomy) कांग्रेस ने भी भाषा-आश्रित विभाजन को स्वीकार कर लिया है। और लीग को भी आत्म-निर्णय के सिद्धान्तानुसार प्रान्तों के पुनर्निर्माण के विषय में कोई आपत्ति न होनी चाहिये यद्यपि पाकिस्तान के नाम पर वह बंगाल और पंजाब प्रान्त की सीमाओं में परिवर्तन होने के विरुद्ध है। २५ जुलाई १९३८ को कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव में आन्ध्र, कर्नाटक और केरला के लोगों को विश्वास दिलाया था कि ज्योंही कांग्रेस को मौका मिलेगा त्योंही वह भाषा सिद्धान्त के ऊपर प्रान्तों के निर्माण की योजना भारत सरकार के सम्मुख रखेगी। और इस समय भी कांग्रेस ने अपने निर्वाचन-पत्र में भाषा-प्रयुक्त विभाजन को स्वीकार किया है। १९३८ में मद्रास के मंत्री-मंडल ने भी आंध्र को अलग प्रान्त बनाने की योजना रक्खी थी, परन्तु भारत सचिव ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। आंध्र को अलग प्रान्त करने की योजना तो बहुत पुरानी है। १९१३ के लगभग तैलगू ज़िलों की कांग्रेस ने आंध्र प्रान्त की माँग की थी और उसके बाद दो बार मद्रास की धारा-सभा ने इस नये प्रान्त के निर्माण का प्रस्ताव बहुमत से पास भी किया था।

हमारे आज के प्रान्त भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों, संस्कृतियों और वर्गों के समूह हैं जिसके कारण प्रान्तीय शासन साम्प्रदायिकता, द्वेष और प्रतिद्वन्द्विता का अखाड़ा बन रहा है। प्रान्तीय सीमाओं की कड़ी आलोचना करते हुए १६३० में साइमन कमीशन ने मद्रास के विषय में लिखा था—"इस प्रान्त की सामाजिक भिन्नता, भाषा की भिन्नता से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं और इनका वहाँ की राजनैतिक परिस्थिति पर व दलों के निर्माण में गंभीर प्रभाव पड़ रहा है।" मद्रास अहाते की सीमा तो टीपू सुल्तान की हार के बाद १७६६ में बन चुकी थी और उस सीमा के बनाने में केवल सैनिक वा शासन-सुविधाओं को ही ध्यान में रखा गया था। यदि किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर मद्रास का पुनर्निर्माण हो तो मद्रास को कई प्रान्तों में बाँटना आवश्यक हो जावेगा। यह विभाजन शासन और मद्रास के हित के लिए आवश्यक है। तामिल और तैलगू यहाँ की मुख्य भाषाएं हैं, मलयालम—त्रावणकोर और कोचीन के आस-पास मलाबार ज़िलों में बोली जाती है। मैसूर और बम्बई की सीमा के पास के ज़िलों की भाषा कन्नड़ी है। कुछ भागों में तुलू बोली जाती है और उड़ीसा के पास के उत्तर-पूर्वी ज़िलों की भाषा उड़िया है। १६३५ के एक्ट के अनुसार जब उड़ीसा का प्रान्त बना तो ये ज़िले उड़ीसा के हिस्से बना दिये गये। परन्तु अब भी मद्रास की सीमाओं में परिवर्तन होने की आवश्यकता है। आंध्र देश वासियों का (तामिल भाषी) आन्दोलन तब तक बराबर चलता रहेगा जब तक वे अपना स्वतंत्र प्रान्त न बना लेंगे। बिहार प्रान्त में छोटा नागपुर अपनी सभ्यता में बिहारियों से बिलकुल भिन्न है और इधर कुछ वर्षों से अलग होने की चेष्टा कर रहा है। आसाम के सिलहट, सिलचर और गोलपारा के ज़िले अधिकतर बंगालियों से भरे पड़े हैं और आसाम के पूरे प्रान्त में बंगाली बोलने वालों की संख्या आसामियों से कहीं अधिक है। बम्बई का भी यही हाल है। भाग्य से सिंध जो अपनी संस्कृति और भाषा में बम्बई के बिलकुल भिन्न था अलग कर दिया गया है। परन्तु अब भी बम्बई अहाते में चार संस्कृति और भाषाएं हैं, गुजराती, मराठी खानदेशी और कन्नड़ी। गुजरातियों और मरहठों की दलबंदियों और द्वेष के

कारण प्रान्त का पूरा शासन गंदा हो रहा है। बम्बई अहाते का दक्षिणी भाग कर्नाटक के ज़िले हैं जो बड़ी अच्छी तरह से मद्रास के दक्षिणी भाग से जोड़े जा सकते हैं—क्योंकि इस भाग के लोगों की जाति-पाँति, रहन-सहन और भाषा कनड़ी ही है। ये कर्नाटकी अपने को एक भिन्न समूह मानते हैं। उनके दिलों में अब भी हिन्दू राज्य विजयनगर के वैभव तथा कनड़ी राज्यवंश की स्मृतियाँ जाग्रत हैं और उन्हें अपनी भिन्न संस्कृति पर अब भी गर्व है। खानदेशी ज़िले मध्य प्रान्त के दक्षिणी ज़िलों से मिलाये जा सकते हैं और इस प्रकार प्रान्तों की सीमा वैज्ञानिक बनाई जा सकती हैं। मध्य प्रान्त में भी महाकौशल और महाराष्ट्र भागों में पुराना वैमनस्य चला आ रहा है। और यह वैमनस्य और अविश्वास का वातावरण प्रान्त के लिए अहितकर है। बिहार में बंगाली और बिहारी की समस्या बड़ी जटिल है और वह प्रान्त के पूरे शासन को गंदा किये है।

देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्तों का निर्माण प्रान्तों की उन्नति को दृष्टि में रखते हुए किया जावे। जो भाग अपनी संस्कृति, भाषा, रहन-सहन और इतिहास के कारण एक हों, उन्हें एक प्रान्त बना दिया जावे। सिंध अपने सांस्कृतिक विकास में बम्बई से बहुत पिछड़ा था इस कारण सिंध और बम्बई का एक प्रान्त रहना सिंध के लिए अच्छा न था।

इस विभाजन में हमें एक और बात भी स्मरण रखनी होगी। १९३५ के एक्ट या हमारी आज की विचार धारा के अनुसार हमारा भावी केन्द्रीय शासन संघीय होगा। भारतवर्ष के लिए संघीय शासन ही हितकर है, परन्तु इसके लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्त अपनी एक पूर्ण इकाई हो। वह स्वावलम्बी हो, अपनी उन्नति करने की सामर्थ्य रखता हो और उसमें एकता का भाव हो। सिंध और उड़ीसा का निर्माण अन्य दृष्टिकोणों से तो ठीक है परन्तु आर्थिक दृष्टि से ये प्रान्त स्वावलम्बी नहीं हैं। प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार को सिंध और उड़ीसा को क्रमशः १ करोड़ और ५० लाख रुपया उनके शासन खर्च को देना पड़ता है। इस रकम का भार अन्य प्रान्तों पर डाला जाना अच्छा नहीं है साथ ही इस सहायता से प्रान्त की

आन्तरिक स्वतंत्रता में भी वाधा पड़ने की संभावना है।

प्रान्त-निर्माण में हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कहीं इनके कारण प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता वढ़ने की आशंका तो नहीं है। पूरे राष्ट्र की भलाई उसी समय सम्भव हो सकती है जब प्रान्तों में प्रतिद्वन्द्विता न होकर सहयोग हो।

१९३५ के एक्ट के अनुसार नये प्रान्तों के बनाने और पुराने प्रान्तों की सीमा परिवर्तित करने वा क्षेत्रफल घटाने वढ़ाने का अधिकार स-कौंसिल सम्राट को है और इस संवंध में भारत- सचिव सम्राट को तभी सलाह देगा जब उसे प्रान्तीय वा संघीय सरकार और उनकी धारा-सभाओं की इच्छा इस प्रकार की मालूम होगी। इस अधिकार के होते हुए भी अभी निकट भविष्य में ब्रिटिश सरकार की कोई भी इच्छा इन प्रान्तीय सीमाओं के वदलने की नहीं है, यद्यपि आज से वहुत वर्ष पूर्व १९३० में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि आधुनिक प्रान्तों को हम स्वायत्त शासन के आदर्श क्षेत्र नहीं मान सकते।

भावी वैधानिक सुधारों में प्रान्तीय सीमा परिवर्तन का प्रश्न वड़ा महत्व-पूर्ण है। और यद्यपि यह वात सर्व स्वीकृत है कि प्रान्तों का पुनर्निर्माण हो परन्तु यह निर्माण किस ढंग से किया जावे इस पर राजनैतिक क्षेत्रों में कुछ भी चर्चा नहीं हुई है। १९३५ में दी हुई धारा वड़ी असंतोष पूर्ण है क्योंकि यह परिवर्तन एक तो वाह्य शक्ति सकौंसिल सम्राट् के हाथ में है दूसरे वह प्रान्तीय धारा-सभा के प्रस्ताव पर आश्रित है। हमारी प्रान्तीय धारा सभायें लगभग १४% जन-संख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं इस कारण उनके प्रस्ताव वास्तव में लोकमत के अनुरूप हैं इसमें सन्देह है। दूसरे इनके द्वारा अल्प-संख्यक वर्गों के हितों की रक्षा की आशा करना भी व्यर्थ है। और प्रान्तीय पुनर्विभाजन का प्रश्न अल्पसंख्यक वर्गों के हित हैं। ऐसी अवस्था में यही अच्छा होगा कि प्रत्येक ज़िला अपने वहुमत द्वारा यह निश्चय करे कि वह किस प्रान्त का भाग रहेगा। उस समय हमें अपने प्रान्तों की संख्या भी वढ़ानी होगी जो शासन की दृष्टि से आवश्यक भी है। संयुक्तप्रान्त में अल्पसंख्यक

दलों की कोई समस्या नहीं है परन्तु इतने बड़े प्रान्त का शासन एक गवर्नर के हाथ में देना अच्छा नहीं। प्रान्तों के छोटे और प्रायः बराबर होने पर हम संघीय धारा-सभा के दूसरे मंडल में प्रत्येक प्रान्त को बराबर सदस्य भेजने का अधिकार भी दे सकेंगे जो संघीय शासन के लिये आवश्यक होते हुए भी आज संभव नहीं है। प्रान्तों के पुनर्निर्माण से हमारे कई भाग (चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त, आदिम जातियों के क्षेत्र आदि) जो १६३५ के सुधारों से वंचित कर दिये गये हैं, नये सुधारों में दिये गये अधिकारों का उपभोग कर सकेंगे।

स्वायत्त शासन का जन्म

१९३५ के एक्ट के अनुसार प्रान्त अपने आन्तरिक शासन में एक प्रकार से स्वतंत्र कर दिये गये हैं; परंतु इसके पूर्व भारतवर्ष में एकात्मक सरकार होने के कारण प्रान्तों के आंनरिक शासन पर केन्द्रीय सरकार का काफ़ी अधिकार था। कुछ तो संघीय शासन की शर्तों के कारण, कुछ राजनैतिक दृष्टि से वा कुछ शासन की सुविधाओं को देखते हुए यह परिवर्तन आवश्यक था। प्रान्तीय वा केन्द्रीय शासन का संबंध हमारे वैधानिक इतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इन पृष्ठों में हम केवल इसी संबंध के ऊपर संक्षिप्त में विचार करेंगे।

हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी तीन स्वतंत्र शाखाएं बम्बई, मद्रास और बंगाल में खोली थीं। भारत विजय के साथ इन शाखाओं का कार्यक्षेत्र बढ़ने लगा और ये शाखायें शासन संस्थायें बन गईं। धीरे-धीरे तीन प्रान्तों का विस्तार होने लगा परन्तु १७७३ तक ये प्रान्त अपने शासन में एक दूसरे से स्वतंत्र रहे। अन्य भारतीय नरेशों से संबंध

स्थापित करने, वा युद्ध और संधि के लिए यह अनिवार्य हो गया कि ब्रिटिश भारत की नीति इन मामलों में एक हो, इस कारण १७७३ के रेग्युलेटिंग एक्ट के द्वारा बंगाल के गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को, वैदेशिक नीति वा युद्ध और संधि के मामलों में, बम्बई और मद्रास के प्रान्तों पर अधिकार मिल गया। यह अधिकार केवल इन्हीं क्षेत्रों तक सीमित था; अपने आन्तरिक शासन में तथा अपने प्रान्त के लिए क़ानून बनाने में बम्बई और मद्रास के प्रान्त अब भी पूर्ण स्वतंत्र थे। परन्तु १८३३ के चार्टर एक्ट द्वारा बंगाल का गवर्नर जनरल भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल बना दिया गया। और उसका अधिकार सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत पर माना जाने लगा। इसी एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कौंसिल में एक क़ानून सदस्य भी बढ़ाया गया जो सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत की क़ानून व्यवस्था का उत्तरदायी हो गया। मद्रास और बंबई की सरकार से क़ानून बनाने का अधिकार छीन लिया गया और इस प्रकार १८३३ में भारत सरकार का सूत्रपात हुआ। इसी अवसर पर लिखे गये कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर के पत्र से हमें इस काल की भारत सरकार के अधिकार का अच्छा ज्ञान हो सकता है। उन्होंने लार्ड विलियम बेंटिंक को लिखा कि सारा शहरी और सैनिक शासन का उत्तरदायित्व भारतवर्ष के गवर्नर जनरल पर है और अभी तक अन्य प्रान्तों पर जो निरीक्षण बंगाल के गवर्नर जनरल का रहा है वह किसी भी हालत में सन्तोषजनक नहीं है। ब्रिटिश भारत के शासन का श्रेय और बदनामी अब प्रान्तों पर न होकर भारत सरकार पर है। १८३३ के एक्ट की ओर संकेत करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि इस एक्ट का उद्देश्य उपर्युक्त विचारों को कार्यान्वित करने का है। "चूंकि अब तुम्हें भारत के समग्र भागों पर शासन करने के सब अधिकार दे दिये गये हैं और इन सब भागों में सुचारु शासन का उत्तरदायित्व तुम्हारे ही ऊपर है, इस कारण यह तुम्हें विचार करना होगा कि किस सीमा तक और किन-किन मामलों में भारतीय सरकार के अधिकार प्रान्तों को दिये जा सकते हैं और किस सीमा तक वा किन मामलों में अपने ही हाथ में रखकर इन अधिकारों का सदुपयोग हो सकता है।

परन्तु तुम्हारे पास इस बात का पूर्ण सबूत होना चाहिये कि शासन के वे विषय जिन्हें तुम प्रान्तीय सरकार के हाथ में छोड़ देना चाहते हो और जिनकी छोटी-छोटी बातों में तुम्हारा हस्तक्षेप करना लाभप्रद न होगा, प्रान्तों द्वारा अच्छी तरह शासित हो रहे हैं। आवश्यकता पड़ने पर इन सब मामलों में हस्तक्षेप करना भी तुम्हारा कर्तव्य होगा।"

पाँच वर्ष बाद डायरेक्टर्स ने फिर इसी प्रकार की चेतावनी दी थी कि यद्यपि शासन की प्रत्येक सूक्ष्म बातों में तुम्हारा हस्तक्षेप करना न तो संभव है और न आवश्यक ही, फिर भी यदि तुम उन सब बातों को बिना किसी आलोचना के यों ही छोड़ दोगे जो तुम्हारे विचार से किसी अहाते या पूरे साम्राज्य के लिए घातक है, तो यह कार्य तुम्हारे पद के योग्य न होगा।

इस प्रकार १६१६ तक गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल पूरे भारतवर्ष के शहरी और सैनिक शासन की सर्वोच्च अधिकारी बनी रही। प्रान्तीय सरकारें एक प्रकार से भारत सरकार की एजेन्ट रूप हो गईं—जिन्हें अपने-अपने प्रान्तों में गवर्नर जनरल द्वारा दिये गये आदेशों को पूरा करना पड़ता था। भारत की पूरी सरकार पूर्ण रूप से एकात्मक सरकार बन गई। १६१५ का गवर्मेंट आफ इण्डिया एक्ट भी भारत सरकार की इस पूर्ण सत्ता की ओर संकेत करता है।

"प्रत्येक प्रान्तीय सरकार स-कौंसिल गवर्नर जनरल के आदेशों को मानेगी और अपनी उन सब कार्यवाहियों और मामलों को सदैव और ठीक रूप से सूचित करती रहेगी, जिसे उसकी (प्रान्तीय सरकार की) दृष्टि से भारतीय सरकार का जानना आवश्यक है या जिसके सम्बन्ध में उसे किसी सूचना की आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकार अपने सब प्रान्तीय मामलों में भारतीय सरकार के पूर्ण अंतर्गत रहेगी*।"

---

* "Every local government shall obey the orders of the Governor-General in Council, and keep him constantly and diligently informed of its proceedings and of all matters which ought, in its

यहाँ एक बात स्मरणीय है कि न तो १८३३ के चार्टर एक्ट के द्वारा और न डायरेक्टर के आदेशों के फल स्वरूप ही प्रान्तीय और भारत सरकार के बीच शासन सम्बन्धी विषयों का विभाजन हो सका। चूँकि शासन की सुविधाओं के लिए प्रान्तों को कुछ न कुछ अधिकार देना आवश्यक था इस कारण १९१९ तक प्रान्तीय और केन्द्रीय विषयों का जो विभाजन हमें मिलता है वह केवल शासन सुविधाओं की उत्तरोत्तर विकास के कारण हुआ है। संघीय शासन के नियमानुसार नहीं। १९०९ की डिसेन्ट्रलाइजेशन (अकेन्द्रीकरण) कमीशन की रिपोर्ट से भी यही बात मालूम होती है। उनके मतानुसार "कोर्ट आफ डाइरेक्टर द्वारा संकेत की गई प्रान्तीय और केन्द्रीय अधिकारों की ठीक-ठीक सीमा आज तक बनाना बड़ा कठिन है; केवल यही कहा जा सकता है कि केन्द्रीय सरकार को मोटे सिद्धान्तों को बनाना चाहिये और उन सिद्धान्तों की छोटी-छोटी सूक्ष्म बातों को काम में लाने का काम प्रान्तीय सरकार पर छोड़ देना चाहिये। यद्यपि कभी-कभी यह कहना बड़ा मुश्किल है कि मोटा सिद्धान्त क्या है और सूक्ष्म बातें क्या हैं या कि सूक्ष्म या छोटी-छोटी बातें मोटे सिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं जा सकतीं। मौका पड़ने पर यही छोटी-छोटी बातें बड़ा भारी बवंडर बन सकती हैं, जिनमें भारत सरकार या भारत सचिव तक को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान करना पड़े। इसलिए सबसे अच्छी बात तो यही है कि प्रान्तीय और केन्द्रीय विषयों का विभाजन शासन विधान में न किया जावे और उनका सम्बन्ध भिन्न-भिन्न या बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार बदलता जावे।"*

---

opinion, to be reported to him, or as to which he requires information and is under his superintendence, direction and control in all matters relating to the government of its province."

* "The difficulty of defining the exact limits between a 'just control' and petty vexations, meddling interference, recognized by the Court of Directors in 1834, still remains. It is easy to say that

१६वीं सदी के मध्यकाल में केन्द्रीय सरकार का प्रान्तों पर पूर्णाधिकार तीन बातों में पाया जाता है। (१) आर्थिक, (२) धारात्मक और (३) शासन-सम्बन्धी।

आर्थिक मामलों में प्रान्तीय सरकार केन्द्र के ही ऊपर निर्भर थी। ब्रिटिश भारत की सारी आय सम्राट की आय मानी जाती थी और प्रान्तीय सरकारों को कानून की दृष्टि से अपने प्रान्तों की आय में भी कोई अधिकार न था। सारी आय केन्द्रीय सरकार जमा करती थी और वही केवल बहुत छोटे-मोटे ख़र्चों को छोड़कर, भारत सरकार के सारे खर्च की जिम्मेवार थी। आख़िर उन दिनों ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी से ही तो सरकार बन रही थी और इस कारण आय और ख़र्च के संबंध में उसका यह हिसाब-किताब ठीक ही था। १८५८ के बाद भी जब ईस्ट इंडिया कम्पनी से भारत का राज्य सम्राट के हाथों आया तो भी आर्थिक संबंध में कुछ भी सुधार न हुआ। प्रान्तीय सरकार कोई भी ख़र्च बिना केन्द्रीय सरकार की अनुमति के नहीं कर सकती थी। उस समय के आर्थिक संबंध के ऊपर

---

the Central Government should confine itself to laying down general principles, and that the detailed application of these should be left in the hands of the subordinate Governments, but in practice it is sometimes extremely difficult to say what are mere details, and whether these may not affect the application of a principle. Again, what is normally a detail, properly left to a local Government, may at a period of political stress or under altered circumstances become a matter in which the Government of India, and even the Secretary of State, must assert their responsibilities. It is, therefore, of paramount importance, that the relations between the Government of India, and the Provincial Governments should be readily adaptable to new or changing, conditions and should not be stereotyped by anything in the nature of a rigid constitution."

लिखता हुआ सर रिचर्ड स्ट्रेची कहता है कि "इस आय का बँटवारा एक प्रकार की खींचातानी में परिवर्तित हो गया था जहाँ बिना किसी तुक के अधिक ज़ोर वाले को अधिक रुपया मिल जाया करता था। और चूँकि कम ख़र्ची से प्रान्त को कुछ भी फ़ायदा न था इस कारण फिजूल ख़र्ची कम करने की कोई रत्ती भर परवाह न करता था और इधर प्रान्तीय आय के बढ़ने से भी प्रान्त के सुधार की गुंजाइश न थी इस कारण प्रान्तीय सरकारों की आय बढ़ाने की इच्छा निम्नतम धरातल पर ही थी।"*

लार्ड मेयो ने पहली बार आर्थिक सुधार के लिए क़दम बढ़ाया और पहली बार प्रान्तीय सरकार को अपने आर्थिक क्षेत्र में उत्तरदायित्व मिला। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को कुछ खास-खास विषयों के लिए (उदाहरणार्थ, पुलिस, जेल और अस्पताल के लिए) एक निश्चित रक़म खर्च के लिए मिल गई जिसे वे किसी सीमा तक स्वतंत्र रूप से भिन्न-भिन्न मदों में खर्च कर सकते थे। आवश्यकतानुसार वे इस रक़म को अन्य स्थानीय टैक्स लगाकर बढ़ा सकते थे। इस प्रकार प्रान्तीय सरकार ने अपने खर्चों में भी कमी करने का उद्देश्य रखा, ताकि बची हुई रक़म वह अन्य उपयोगी कामों में लगा सके। प्रान्तीय आय भी बढ़ाने की कोशिश की गई। लार्ड लिटन के समय में प्रान्तों को और भी अधिक अधिकार मिल गये। प्रान्तीय विषयों के खर्च में केन्द्रीय सरकार ने हस्तक्षेप करना बहुत कम कर दिया और एक निश्चित रक़म देने के स्थान में केन्द्रीय सरकार ने यह तय किया कि प्रत्येक

---

*The distribution of the public income degenerated into something like a scramble in which the most violent had the advantage, with very little attention to reason. As local economy brought no local advantage the stimulus to avoid waste was reduced to a minimum, and as no local growth of the income led to local means of improvement, the interest in developing the public revenues was also brought down to the lowest level".

प्रान्त अपनी आय के कुछ मदों की रक़म पूर्ण रूप से और कुछ मदों की एक निश्चित औसत अपने खर्च में लाया करे। इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त को अपनी आय बढ़ाने का उत्साह भी हुआ। यह पहला मौका था जब लार्ड लिटन की सरकार ने आय के मदों का वर्गीकरण प्रान्तीय और भारतीय दो भागों में किया। प्रान्तीय आय के मद अधिकतर वे विषय थे जिनसे प्रान्तीय सरकार थोड़ी भी सतर्कता और बुद्धि से अपनी आय काफ़ी बढ़ा सकती थी। जैसे—जंगल, आबकारी, लाइसेंस टैक्स (इनकम टैक्स) स्टाम्प, रजिस्ट्रेशन, कानून और न्याय, शिक्षा और सार्वजनिक कार्य। प्रान्तीय खर्चे को पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार लगान की रक़म की भी कुछ औसत प्रान्तों को देती थी।

यह सिलसिला १६०४ तक रहा। १६०४ में प्रान्तीय केन्द्रीय आय के मदों का वर्गीकरण प्रायः स्थायी हो गया जिसके कारण प्रान्तों को अपने आर्थिक क्षेत्र में काफ़ी स्वतंत्रता मिल गई और उन्हें अपनी आमदनी बढ़ाने और खर्च कम करने का अधिक हौसला हुआ। इसके पूर्व केन्द्रीय सरकार अपनी आय बढ़ाने के लिए इस वर्गीकरण में प्रायः हर पाँचवें वर्ष परिवर्तन कर दिया करती थी जिसके कारण प्रान्तों का उत्साह कम हो जाया करता था, क्योंकि उनके कम खर्च का यह अर्थ होता था कि जब फिर पाँच वर्ष बाद नया वर्गीकरण होता तो उन्हें उस कम खर्च के हिसाब से ही आय के मद मिलते। कुछ समय के बाद अकाल के खर्च की जिम्मेवारी भी किसी हद तक केन्द्रीय सरकार ने बँटवा ली। लार्ड हार्डिंग के समय में यह वर्गीकरण पूर्ण स्थायी हो गया और केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय बजट के बनने में हस्त-क्षेप करना भी बन्द कर दिया।

१६१६ के सुधार तक यही हाल रहा। प्रान्त अब भी केन्द्रीय सरकार के ऊपर निर्भर थे। उनकी कुछ भी स्वतंत्र सत्ता न थी। क्योंकि केन्द्रीय सरकार ही प्रान्तीय खर्च और शासन के लिए उत्तरदायी थी और वह यह कभी न चाहती कि कोई भी प्रान्त अधिक खर्च करके कर्ज़दार या दिवालिया हो जावे। इस कारण केन्द्र को प्रान्तीय शासन में हस्तक्षेप करना आव-श्यक था। लगान के मामले में भी उसे प्रान्तीय शासन पर अपना अंकुश

रखना पड़ता था। दूसरे किसी भी प्रान्त को अब भी नये टैक्स लगाने का अधिकार न था क्योंकि नये टैक्स लगाने की आज्ञा पहले स-कौंसिल गवर्नर जनरल तथा भारत सचिव से लेना आवश्यक थी। बिना इनकी पूर्व अनुमति के कोई भी प्रस्ताव धारासभा में नहीं रखा जा सकता था। तीसरे प्रान्तों को ऋण लेने का भी कोई अधिकार न था। इस काल में प्रान्तों के अधिकारों का कम होना स्वाभाविक भी था क्योंकि १९१९ के सुधार तक ये प्रान्त अपने शासन के लिए जनता को उत्तरदायी न थे और इस अभाव में उनके ऊपर किसी न किसी अंकुश का होना आवश्यक था। इधर भारत-सरकार पूरे भारत के लिए पार्लियामेंट को जिम्मेवार थी इस कारण केन्द्रीय सरकार का प्रान्तीय शासन में हस्तक्षेप करना सिद्धान्त के प्रतिकूल बात न थी।

१९१७ में मांटेग्यू महोदय ने जब अपने वक्तव्य में यह कहा कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारतवर्ष में धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार की स्थापना है तब सबसे पहले यह प्रश्न आया कि किस तरह इस उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो सकती है। मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के विद्वान् लेखक भारतीय शासन-प्रणाली की पूरी विवेचना करने के बाद इसी नतीजे पर पहुँचे कि हमें भारतीयों को उनकी स्थानीय संस्थाओं में पूर्ण अधिकार देने के साथ ही साथ प्रान्त के कुछ विषयों के शासन में भी जिम्मेवार बनाना चाहिए। जब भारतीय जनता शासन के इन विषयों में दक्ष हो जावेगी तो धीरे-धीरे पूरे प्रान्त का शासन या पूरे देश का शासन इनके सुपुर्द किया जावेगा। इस प्रकार १९१९ के सुधार भारतवर्ष में उत्तरदायित्व शासन की स्थापना की प्रथम सीढ़ी थे। अभी तक प्रान्तीय और केन्द्रीय संबंध केवल शासन-सुविधा की दृष्टि से बदलता रहा था, परंतु १९१९ के एक्ट में यह परिवर्तन राजनीतिक कारणों से प्रारंभ हुआ।

१९१९ के एक्ट के द्वारा जो सुधार हुए उनमें प्रान्तीय शासन में तो परिवर्तन हुआ ही परंतु उसके साथ पूरी वैधानिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आवश्यक हो गया। १९१९ ने प्रान्तों को द्विविध शासन दिया। प्रान्त के शासन संबंधी विषय दो भागों में बाँट दिये गये—हस्तान्तरित और रक्षित।

हस्तान्तरित विषय वे थे जो प्रान्त की धारासभा के उत्तरदायी मंत्रियों द्वारा शासित होते थे और इन विषयों में स्थानीय स्वराज्य की संस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता आदि विषय सम्मिलित थे। रक्षित विषय वे थे जिन्हें गवर्नर अपनी कौंसिल की सहायता से शासित करता था और इन विषयों के शासन में गवर्नर केन्द्रीय सरकार को उत्तरदायी था। इस क्षेत्र में जनता को कुछ भी अधिकार न थे। यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में वही पुरानी शासन-प्रणाली चल रही थी जो सुधार के पूर्व चालू थी। हस्तांतरित विषयों से बचे हुए विषय जैसे क़ानून और व्यवस्था, लगान, अर्थ आदि रक्षित विषय थे।

प्रान्तीय शासन के इस परिवर्तन से और भी कई वैधानिक परिवर्तन हो गये। अभी तक केन्द्रीय सरकार के हाथ में जो भारत के पूरे शासन की वागडोर थी वह न रही। हस्तांतरित विषयों में हस्तक्षेप करने का उसे अथवा भारत सचिव को कुछ भी अधिकार न रहा। केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन विषयों का वर्गीकरण हो गया। प्रान्तीय विषयों के शासन में प्रान्तीय सरकार स्वतंत्र थी और इन्हीं विषयों पर प्रान्तीय धारासभा क़ानून भी बना सकती थी यद्यपि केन्द्रीय धारासभा को अभी भी प्रान्तीय विषयों पर क़ानून बनाने का अधिकार था [धारा ८४ (६) के अन्तर्गत] और कई विषयों पर अब भी प्रान्तीय सरकार को क़ानून बनाने की पूर्व सम्मति गवर्नर जनरल से लेना आवश्यक थी [धारा ८० अ (३)]। परंतु साधारणतः प्रान्तीय विषय प्रान्तीय सरकार के शासन विषय थे। केन्द्रीय आय के मद भी प्रान्तीय मदों से अलग कर दिये गये जो मोंटफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों का प्रथम उद्देश्य था।*
क्योंकि आर्थिक मामलों में केन्द्रीय सरकार का किसी भी रूप से हस्तक्षेप करना प्रान्त की उत्तरदायी सरकार का विनाश करना था।

द्विविध शासन सफल न हो सका इस कारण प्रान्त के शासन में

---

*("Our first aim has been to find some means of entirely seperating the resources of the central and provincial governments.")

परिवर्तन करना आवश्यक था। दूसरे ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने १९१७ के वक्तव्य से भी बाध्य थी कि वह उत्तरदायी सरकार की दूसरी सीढ़ी की स्थापना करे। इस कारण १९३५ के एक्ट में प्रान्तों में द्विविध शासन के बदले स्वायत्त शासन की स्थापना की गई। रक्षित और हस्तांतरित विषयों का भेद मिटा दिया गया और प्रान्त का पूरा शासन गवर्नर वा उत्तरदायी मंत्रियों के हाथ में सौंप दिया गया। अपने वचनानुसार ब्रिटिश सरकार ने प्रान्त में पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार की स्थापना करने की कोशिश की। इस प्रान्तीय स्वायत्त शासन की स्थापना का एक तीसरा भी कारण था। हमारे भारतवर्ष की उन्नति केवल ब्रिटिश भारत की उन्नति में ही नहीं है। देशी रियासतों को भी हमें अपने साथ ले चलना होगा इस कारण जब देशी रियासतों ने १९३० की गोलमेज़ सभा में ब्रिटिश भारत के साथ संघ स्थापना की इच्छा प्रकट की, तब से पूरा भारतीय विचार संघ-शासन की ओर आकर्षित हो गया। एकात्मक सरकार में जहाँ प्रान्त केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत माने जाते हैं और जहाँ केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकार के शासनाधिकारों में हस्तक्षेप कर सकती है, न तो देशी रियासतों का ही भारतीय शासन में सम्मिलित होना संभव था और न प्रान्तों में उत्तरदायित्व सरकार की स्थापना ही हो सकती थी। क्योंकि न तो देशी रियासतें ही और न प्रान्तीय सरकार ही केन्द्र का हस्तक्षेप पसंद करती। संघ-शासन में ऐसी कठिनाई नहीं है। वहाँ प्रत्येक संघ का सदस्य अपने आन्तरिक शासन में—या प्रान्तीय विषयों में पूर्ण स्वतंत्र है। और प्रत्येक संघ के सदस्य को बराबर अधिकार होता है। इस कारण आवश्यकता थी कि प्रान्त को भी किसी सीमा तक देशी रियासतों के समान स्वतंत्र अधिकार दिया जावे। चौथे भारत जैसे विशाल देश के लिए संघीय शासन ही उत्तम है, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भिन्न-भिन्न समस्याएं हैं जिन्हें प्रान्त ही हल कर सकता है। इस नाते से भी प्रान्तों को स्वायत्त शासन मिलना आवश्यक था। १९३५ के एक्ट ने प्रान्तों को स्वायत्त शासन दे दिया। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि अब प्रान्त अपने आन्तरिक शासन में केन्द्रीय सरकार से पूर्ण स्वतंत्र है। हम

आगे चलकर देखेंगे कि हमारा शासन-विधान इतना सरल नहीं है कि हम प्रान्त की स्वतंत्रता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लें। अगले दो अध्यायों में हम प्रान्त के शासन का पूर्ण विवेचन करेंगे और फिर पाँचवें अध्याय में देखेंगे कि हमारा प्रान्तीय स्वायत्त शासन का असली रूप क्या है।

प्रान्त की कार्यकारिणी

१९३५ के एक्ट द्वारा प्रान्त में द्विविध शासन के स्थान पर स्वायत्त शासन मिला है। हस्तान्तरित और रक्षित विषयों का भेद मिटा दिया गया है और प्रान्त का पूरा शासन उत्तरदायी मंत्रियों की सहायता से होगा। प्रान्त की प्रमुख कार्यकारिणी गवर्नर होगा।

गवर्नर

गवर्नर प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी है और सम्राट् का प्रतिनिधि होने के कारण वह पूरे प्रान्त का शासन सम्राट् के नाम पर करता है। अहातों के गवर्नरों की नियुक्ति साधारणतः ५ वर्ष के लिए भारत सचिव की सलाह पर सम्राट् द्वारा होती है और अन्य प्रान्तों के गवर्नर की नियुक्ति सम्राट गवर्नर जनरल की सलाह से करता है। उपनिवेशों के गवर्नर की नियुक्ति वहाँ के मंत्रि-मंडल की सलाह से की जाती है, परन्तु भारतवर्ष को अभी तक यह अधिकार प्राप्त नहीं है। अहातों के गवर्नर सीधे ब्रिटेन से भेजे जाते हैं परन्तु अन्य प्रान्तों के गवर्नर आम तौर से भारतीय सिविल सर्विस के पद से चुने जाते हैं। भारतीय

जनमत बहुत काल से इस चुनाव से असन्तुष्ट है। इंग्लेण्ड के आये हुए गवर्नर वहाँ के राजनैतिक क्षेत्र में काफी काम कर चुके होते हैं इस कारण इंग्लेण्ड की उत्तरदायी सरकार का वातावरण उन्हें अधिक उदार बना देता है और वे भारतवर्ष में उसी उदारता से शासन भी करते हैं। परन्तु अन्य प्रान्तों के वे गवर्नर जो भारतीय सिविल सर्विस के पद से धीरे-धीरे गवर्नर के पद पर पहुँचते हैं बहुत ही संकुचित वृत्ति के होते हैं। इस कारण उनका शासन अनुदार होता है। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के कारण एक कठिन समस्या और उपस्थित हो सकती है और उड़ीसा में यह हुआ ही था। भारतीय सिविल सर्विस के सभी कर्मचारी प्रान्त में काम करते हुए प्रान्तीय मंत्रिमंडल के नीचे काम करते हैं; उन्हें मंत्रियों की आज्ञा से काम करना होता है। परंतु जब उसी सिविल सर्विस का सदस्य गवर्नर बन जाता है तो वह मंत्री-मंडल की सलाह को भी ठुकरा सकता है। उस समय मंत्री-मंडल को उसके नीचे काम करना पड़ेगा। इस कारण यदि अभी भी भारतीयों को गवर्नर की नियुक्ति में सलाह देने का अधिकार नहीं मिल रहा है तो अच्छा यही होगा कि ये गवर्नर सीधे इंग्लेण्ड से आवें। परन्तु ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी ने इस प्रस्ताव को पहले ही ठुकरा दिया था।

अहातों के गवर्नरों का पद प्रान्तों के गवर्नरों के पद से ऊंचा होता है और जब कभी थोड़े काल के लिए गवर्नर जनरल का पद खाली होता है तो वहाँ अहातों के गवर्नर ही भेजे जाते हैं। उन्हें वेतन भी अधिक मिलता है। अहातों और संयुक्त प्रान्त के गवर्नरों को १ लाख २० हज़ार रुपया सलाना मिलता है। पंजाब और विहार के गवर्नरों को १ लाख, मध्यप्रान्त के गवर्नर को ७२ हज़ार और अन्य प्रान्तों के गवर्नरों को ६६ हज़ार रुपया सालाना वेतन मिलता है। इसके अलावा इन्हें अन्य भत्ते भी मिलते हैं। ये भत्ते इनके वेतन से बहुत अधिक होते हैं। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर का वेतन १२०००० रुपया वार्षिक है परन्तु तमाम भत्तों को जोड़कर उसे कुल ३२८५०० रुपया प्रति वर्ष दिया जाता है।

मंत्रि-मण्डल

प्रान्त के शासन में सहायता देने के लिए एक मंत्री-मंडल होता है। इस मंत्री-मंडल के अधिकार की चर्चा एक्ट में कहीं भी नहीं मिलती। सेक्शन ४९ केवल यही कहता है कि गवर्नर स्वयं प्रत्यक्ष रूप से या अपने अधिकृत कर्मचारियों की सहायता से सम्राट के नाम पर प्रान्त का शासन करेगा।* परंतु प्रान्त के मंत्री गवर्नर के अधिकृत कर्मचारी नहीं कहे जा सकते। कलकत्ता हाईकोर्ट के सामने १९३९ में तीन प्रश्न आये थे—(१) क्या बंगाल के मंत्री गवर्नर के अधिकृत कर्मचारी हैं? (२) क्या प्रान्त का मंत्रि-मंडल प्रांत की कार्यकारिणी का एक भाग है? (३) क्या मंत्री-मंडल को हम कानूनन स्थापित सरकार कह सकते हैं? इन तीनों का उत्तर हाईकोर्ट ने केवल एक शब्द में दिया था—"नहीं।"

परंतु गवर्नर के आदेश-पत्र से यह साफ़-साफ़ मालूम होता है कि वास्तव में प्रान्त की सरकार मंत्रिमंडल के हाथ में ही रहेगी। गवर्नर की नियुक्ति पर सम्राट द्वारा गवर्नर को एक आदेशपत्र दिया जाता है जिसमें ये आदेश रहते हैं कि गवर्नर किस प्रकार शासन करेगा। उसी आदेश-पत्र में मंत्री-मंडल बनाने का भी जिक्र रहता है। आदेश-पत्र में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रान्तीय धारा-सभा के चुनाव के पश्चात् गवर्नर बहुमत वाले दल के नेता को बुलाकर उससे मंत्रि-मंडल बनाने को कहेगा। इस नेता द्वारा प्रस्तावित सज्जनों को वह अपना मंत्री बना लेगा। ये मंत्री धारा-सभा के सदस्य होंगे और यदि कोई ऐसा व्यक्ति मंत्री बनाया जाता है जो धारा-सभा का सदस्य न हो तो उसे छः माह के भीतर ही धारा-सभा का सदस्य बन जाना पड़ता है। ये सब मंत्री अपने कार्य के लिए धारा-सभा के उत्तरदायी होते हैं। एक ही नेता द्वारा चुने जाने के कारण और प्रायः एक ही दल के होने के कारण उनमें आपसी राजनैतिक एकता होती है। और वे सामूहिक रूप से धारा-सभा को

*"The executive authority of a province shall be exercised on behalf of his Majesty by the Governor either directly or through officers subordinate to him."

उत्तरदायी होते हैं। एक के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव होना साधारणतः पूरे मंत्री-मंडल पर अविश्वास हो सकता है। इस उत्तरदायित्व के कारण और मंत्रियों के धारासभा के सदस्य बनने के नाते प्रान्त की कार्यकारिणी और धारासभा में बहुत निकट संबंध रहता है। ये सब मंत्री-मंडल नेता (प्रधान मंत्री) की अध्यक्षता में कार्य करते हैं।

मंत्री-मंडल का यह रूप आप से आप इंग्लैंड के मंत्री-मडल की याद दिला देता है। जहाँ सम्राट केवल नाममात्र का वैधानिक सर्वाधिकारी रहता है। परंतु जहाँ सारा कार्य मंत्री-मंडल द्वारा होता है। यह मंत्री-मंडल पार्लियामेंट को उत्तरदायी होता है और शासन का पूरा कार्य इन्हीं के द्वारा होता है। मंत्रियों के इसी उत्तरदायित्व के कारण इंग्लैंड में पार्लियामेंट के ही पास सच्ची राजसत्ता है। और पार्लियामेंट जनता की प्रतिनिधि होने के कारण जनता की इच्छा को ध्यान में रखते हुए काम करती है। इस कारण हम कह सकते हैं कि इंग्लैंड में स्वतः शासन या प्रजात्मक राज्य है। वहाँ पर सच्चा स्वायत्त शासन है। सम्राट के नाम पर सारा शासन होता अवश्य है परंतु उसके अधिकार कुछ भी नहीं हैं। इंग्लैंड के एक लेखक ने सम्राट के केवल तीन अधिकार बताये हैं—(१) चेतावनी देने का अधिकार (२) सलाह लिए जाने का अधिकार और (३) उत्साहित करने का अधिकार। और इस कथन की सत्यता इसी बात से समझी जा सकती है कि सम्राट का सारा शासन कार्य मंत्री-मंडल करता है। सम्राट का काम अधिकतर मंत्रियों के प्रस्तावों पर हस्ताक्षर करना है। इसी कारण इंग्लैंड के विधान में सम्राट केवल नाममात्र का सर्वाधिकारी है। सच्ची सत्ता तो वहाँ जनता के प्रतिनिधि की संस्था पार्लियामेंट के हाथ में है।

हमारे प्रान्तों में भी मंत्री-मंडल हैं और वे प्रान्तीय धारासभा को उत्तरदायी भी हैं। परंतु हमारे यहाँ का गवर्नर इंग्लैंड के बादशाह के समान केवल नाममात्र का सत्ताधारी नहीं है उसके कुछ विशेषाधिकार हैं जिन्हें वह बिना मंत्री-मंडल की सलाह के उपयोग में लाता है। उसके ये विशेषाधिकार हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—शासन संबंधी, धारा संबंधी और अर्थ संबंधी

१—शासन संबंधी अधिकार

(अ) वे निजी अधिकार हैं जिनसे वह अपने विशेष उत्तरदायित्व की पूर्ति करता है। इन मामलों में वह मंत्रियों से सलाह तो लेता है पर करता है अपने मन की। चाहे तो वह सलाह स्वीकार करे, चाहे तो उसे ठुकरा दे। गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व निम्न-लिखित हैं :—

(१) प्रान्त या उसके किसी भाग में अमन-चैन भंग करने वाले ख़तरों को रोकना।

(२) अल्पसंख्यक वर्गों के न्यायपूर्ण हितों की रक्षा करना।

(३) सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों को शासन विधान द्वारा दिये गये अधिकारों को दिलाना और उनके न्यायपूर्ण अधिकारों की रक्षा करना।

(४) भारतीय और अँग्रेज़ों के व्यापार की विषमता रोकना जिसमें अँग्रेज़ों के व्यापार पर कोई विशेष प्रतिबंध न लगे।[1]

---

[1] चौथा विशेष उत्तरदायित्व ध्यान देने योग्य है। यह उत्तरदायित्व ब्रिटिश माल या व्यापार पर प्रतिबंध लगाने के सिलसिले में है। १९३५ के क़ानून का ढाँचा तैयार होने पर इंग्लैंड वा भारत स्थित ब्रिटिश व्यापारियों को आशंका हुई कि कहीं कांग्रेस का यह उद्देश्य कि "भारतीयों के हाथ ही भारतीय आर्थिक उन्नति हो सकती है" उनके व्यापार को चौपट न कर दे। इस कारण गवर्नर को यह विशेषाधिकार दिया गया। परन्तु एक वैधानिक क़ानून से ब्रिटिश व्यापार की रक्षा करने की चेष्टा की सभी लोगों ने कड़ी आलोचना की है। एक सभ्य देश की व्यवस्थापिका सभा के नाते भारतीय धारा-सभा पर विश्वास किया जाना चाहिये था। साथ ही यह भी सोचने की बात है कि क्या ब्रिटिश व्यापार की रक्षा क़ानून द्वारा हो सकती है वह तो भारतीयों के मित्रवत व्यवहार पर निर्भर है।

(५) सीमित पृथकक्षेत्रों में शांति रखना और वहाँ के शासन का प्रबंध करना।
(६) प्रान्त के अंतर्गत भारतीय नरेश की पदवी और अधिकारों तथा उस रियासत के अधिकारों की रक्षा करना।
(७) गवर्नर जनरल के निजी वा स्वतंत्र अधिकारों में दी गई आज्ञाओं वा निर्देशकों को अमल में लाना। मध्य प्रान्त के गवर्नर का एक विशेष उत्तरदायित्व यह भी देखना रहेगा कि बरार के लाभ के लिए एक सन्तोषजनक आय का भाग खर्च किया जाता है या नहीं। सिंध के गवर्नर को लायड बेरेज और नहरों का उचित शासन करने का विशेष उत्तरदायित्व है।

(आ) स्वतंत्र अधिकार—इन अधिकारों को अमल में लाते हुए गवर्नर मंत्री-मंडल की सलाह तक नहीं लेता। निजी अधिकारों में काम करते हुए वह मंत्री-मंडल से सलाह तो लेता है पर करता अपने मन की है। स्वतंत्र अधिकारों में वह मंत्रियों की सलाह तक नहीं लेता। इन अधिकारों का उपयोग वह निम्नलिखित कुछ मुख्य कार्यों में करता है—मंत्रियों का चुनाव वा उन्हें पद से हटाना, धारासभा के मंडलों की बैठक बुलाना, बैठक बंद करना वा उन्हें समाप्त कर देना, दोनों मंडलों की संयुक्त बैठक बुलाना;

सबसे मजेदार बात तो यह है कि इस उत्तरदायित्व के पक्ष में बोलते हुए ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने कहा था कि हम भारतीय और ब्रिटिश व्यापार में समता का भाव रखना चाहते हैं। हम इंग्लैंड में भारतीय व्यापार पर प्रतिबंध न लगावेंगे और इस कारण यह समानाधिकार इंग्लैंड को भी मिलना चाहिये कि उसके व्यापार पर भारत में कोई प्रतिबंध न लगे। यह समानता का अच्छा ढोंग है। थोड़ा सोचने की बात है कि ब्रिटिश व्यापार की तुलना में इंग्लैंड में होने वाला भारतीय व्यापार है ही कितना—जो यह समभाव का ढोंग रचा जा रहा है।

गवर्नर के एक्ट बनाना, पृथक क्षेत्रों का शासन करना; कुछ पदों की नियुक्ति करना आदि।

(इ) पुलिस के अधिकारों और हितों की रक्षा करना।

शांति और व्यवस्था का विषय १६१६ के एक्ट के अनुसार रक्षित विषय था। परन्तु जब यह विभाग भी मंत्रियों को सौंपा जाने लगा तो प्रान्तीय सरकार के अधिकारियों ने ज्वाइंट सिलेक्ट कमेटी के सामने अपना यही मत रखा कि पुलिस विभाग, तथा विद्रोह फैलाने वाले जुर्मों तथा ऐसी अन्य सूचनाओं से संबंध रखने वाले विभागों में गवर्नर को विशेषाधिकार हों। उन्हें पूर्ण रूप से उत्तरदायी मंत्रियों के हाथ में सौंप देना अच्छा न होगा। इसलिए पुलिस के अधिकारों वा हितों की रक्षा के लिए कुछ वैधानिक नियम बना दिये गये हैं :—(१) बिना गवर्नर की पूर्व अनुमति के पुलिस एक्ट वा नियमों में कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, (२) बिना गवर्नर की आज्ञा के खुफिया पुलिस के कागज़ात वा भेद देनेवालों की सूचना किसी बाहर वाले को न दी जावेगी, (३) हिंसात्मक रूप से शासन उलटने या प्रान्त की अमन-चैन में बाधा डालने वाले कार्यों को रोकने के लिए गवर्नर कोई नई संस्था बना सकता है।

(ई) वैधानिक असफलता (Constitutional breakdown) के समय काम में लाये जानेवाले अधिकार।

जब वैधानिक संस्था अपना कार्य करने में असफल हो रही हो उस समय गवर्नर यह घोषणा कर सकता है कि

(१) उसके सब कार्य अब स्वतंत्र अधिकार में होंगे। और

(२) वह प्रान्त की सभी या कुछ संस्था के अधिकारों को पूर्ण या सीमित रूप से अपने हाथ में ले रहा है।

इस घोषणा की सूचना भारत सचिव को देनी होती है और गवर्नर इस घोषणा के सहारे केवल छः माह तक काम कर सकता है।

आवश्यकता पड़ने पर यह अवधि और बढ़ाई जा सकती है परन्तु इसकी अवधि तीन वर्ष से अधिक किसी भी हालत में न रहेगी।

२—धारा संबंधी अधिकार और ३—आर्थिक अधिकार—

इन अधिकारों को हम विशेष रूप से अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

वैसे तो गवर्नर प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी है और सारा शासन ही उसके द्वारा होगा, परन्तु गवर्नर जिस समय जनमत की उपेक्षा करता हुआ शासन करेगा उस क्षेत्र में हमारा स्वायत्त शासन न रह सकेगा। इंगलैंड का बादशाह भी इंगलैंड का सर्वाधिकारी है और उसी के नाम पर शासन भी चलता है; परन्तु वह जनमत को ठुकरा नहीं सकता। सारा काम वह मंत्रियों की इच्छानुसार करता है। उसे स्वयं कुछ करने का अधिकार नहीं है। हमारे यहाँ के गवर्नर प्रान्त का शासन तीन प्रकार से करता है।

(१) मंत्रियों की सलाह से, (२) निजी अधिकार से, (३) स्वतंत्र अधिकार से।

वे सब मामले जिनमें गवर्नर अपने निजी वा स्वतंत्र अधिकार का उपयोग करेगा एक्ट में स्पष्ट कर दिये गये हैं। अतएव बाकी बचे हुए मामलों में वह मंत्री-मंडल की सलाह से काम करेगा। मंत्रियों की दी हुई सलाह में कोई भी न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। कीथ महोदय के विचार से "प्रान्त की वास्तविक कार्यकारिणी मंत्री-मंडल ही रहेगा और वह पूर्ण रूप से सभी बातों के लिए प्रान्तीय धारा-सभा को उत्तरदायी होगा; गवर्नर सम्राट का प्रतिनिधि होकर सम्राट के नाम पर प्रान्त का शासन चलावेगा और वह इंग्लैंड के बादशाह के समान, कुछ विशेषाधिकार और उत्तरदायित्व को छोड़कर, नाम-मात्र का ही शासक रहेगा।" गवर्नर का आदेश-पत्र भी इस मत का समर्थन करता है। उसके अनुसार गवर्नर केवल अपने स्वतंत्र अधिकार के मामलों को छोड़कर बाकी सब कामों में अपने मंत्रियों की सलाह से काम करेगा। इस प्रकार मंत्री-मंडल ही प्रान्त की सर्वोच्च कार्यकारिणी कही जा सकती है। तब तो यह बात निश्चित है कि कुछ विशेषाधिकारों को छोड़कर बाकी प्रान्तीय शासन में हमारा स्वायत्त शासन है। परन्तु सर अब्दुररहीम की दृष्टि से

गवर्नर के ये विशेष उत्तरदायित्व प्रान्तीय शासन संचालन में बाधा उपस्थित करते हैं। इनके कारण धारासभा को उत्तरदायी होने वाले मंत्री स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकेंगे। उनके मत से तो यह अच्छा होता कि गवर्नर को विशेषाधिकार देने के स्थान में यदि अल्पसंख्यक वर्गों और सरकारी नौकरों के अधिकारों को कानून द्वारा सुरक्षित कर दिया जाता। भीषण परिस्थितियों (Emergency) का सामना करने के लिए एक्ट में दी हुई यह धारा ही काफी है कि यह एक्ट किसी भी समय हटाया जा सकता है इस तरह गवर्नर का शान्ति व्यवस्था का विशेषाधिकार भी हटाया जा सकता था।

गवर्नर के इन विशेषाधिकारों और उत्तरदायित्व का प्रभाव दुर्भाग्यवश प्रान्त के पूरे शासन पर पड़ता है और चूँकि इन विशेषाधिकार और उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए गवर्नर की जिम्मेदारी प्रान्त को नहीं है इस कारण प्रान्त का स्वायत्त शासन एक खासा मज़ाक रह जाता है। गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व इतने व्यापक शब्दों में व्यक्त किये गये हैं कि उनके नाम पर वह प्रान्त के किसी भी विभाग में किसी भी समय हस्तक्षेप कर सकता है। "अमन चैन", "शान्ति", "व्यापारिक प्रतिबंध", "अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा", "देशी राज्य और नरेशों के अधिकार की रक्षा करना" आदि ऐसे शब्द हैं जिनको किसी भी हद तक खींचा जा सकता है और जिनका कुछ भी अर्थ निकाला जा सकता है। इन्हें पूरा करने के लिए गवर्नर प्रान्त के पूरे शासन में हस्तक्षेप कर सकता है। तब हमारा स्वायत्त शासन कहाँ रहा? और किस प्रकार हमारा गवर्नर केवल नाममात्र का शासक है?

गवर्नर के इन विशेष उत्तरदायित्व और अधिकारों का प्रश्न साइमन कमीशन के समय से ही उठाया गया है और उसी समय से ही भारतवासियों ने इनकी कड़ी आलोचना की है। गोलमेज़ सभा के सिद्धान्तों को प्रकाशित करने वाले "व्हाइट पेपर" में भी इन अधिकारों की विशेष चर्चा की गई है परंतु इन्हें पूर्ण स्पष्ट करने का काम ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी का है। इस कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार इन अधिकारों का कार्य शासन में सञ्चालन लाना, कार्यकारिणी को शक्तिशाली बनाना; प्रान्त में सुचारु शासन

स्थापित करना तथा प्रान्त के विभिन्न हितों के संघर्ष को हटाना है। परन्तु इसका असली परिणाम प्रान्तों से स्वायत्त शासन को समूल नष्ट करने का हुआ है। द्विविध शासन हटाकर मंत्रियों को पूरे शासन का जो अधिकार एक हाथ से दिया गया था वह गवर्नर के विशेषाधिकार द्वारा दूसरे हाथ से लौटा लिया गया है। जिन्ना साहब ने १९३५ के एक्ट को १९१९ के एक्ट से भी बुरा कहा है। और एक दृष्टि से बात ठीक भी है। द्विविध शासन में प्रान्त के आधे शासन में (हस्तांतरित विषयों में) उत्तरदायी शासन था और आधे विषयों में (रक्षित) स-कौंसिल गवर्नर का। रक्षित विषयों के शासन में गवर्नर और उसकी कौंसिल गवर्नर जनरल वा भारत सचिव को जिम्मेवार थी। १९३५ के स्वायत्त शासन में द्विविध शासन का नाम भर हटाया गया गया है क्योंकि अभी भी प्रान्त के शासन के लिये दो विभिन्न संस्थाओं को उत्तरदायित्व है। प्रान्त के उस शासन में जिसमें गवर्नर मंत्री मंडल की सलाह से काम करता है, उत्तरदायी सरकार है क्योंकि मंत्री-मंडल धारा सभा को जिम्मेवार है। और प्रान्त के उस शासन में जहाँ गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का उपयोग करता है, गवर्नर धारासभा को उत्तरदायी न होकर गवर्नर जनरल और भारत सचिव को उत्तरदायी है। तब क्या हमारे स्वायत्त शासन में द्विविध शासन नहीं है? १९३५ के एक्ट में द्विविध शासन मर तो गया है परंतु उसका भूत अभी तक विद्यमान है। इतना ही नहीं, यदि गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व का व्यापक अर्थ लिया जावे तो १९३५ का एक्ट १९१९ के एक्ट से भी गया-बीता है क्योंकि उनके द्वारा तो गवर्नर प्रान्त के पूरे शासन में हस्तक्षेप कर सकता है।

गवर्नर के विशेषाधिकारों के समान संघीय शासन में गवर्नर जनरल को भी विशेषाधिकार दिये गये हैं। अन्तर केवल इतना है कि प्रान्त में गवर्नर रक्षित विषयों के शासन का जिम्मेवार नहीं है और न उसे आर्थिक मामलों का ही विशेष उत्तरदायित्व है परन्तु गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों के अतिरिक्त उसे पृथक क्षेत्रों का शासन अपने स्वतंत्र अधिकार और सीमित-पृथक-क्षेत्रों का शासन अपने निजी अधिकारों में करना पड़ता है। साथ ही

उसे गवर्नर जनरल की आज्ञा पालन करने का भी विशेष उत्तरदायित्व है।

एडवोकेट जनरल

संघात्मक सरकार का शासन-विधान सदैव ही पेचीदा रहता है और उसमें सदैव ही कानूनी प्रश्न उठते रहते हैं। अतएव इन कानूनी मामलों में सलाह देने के लिए गवर्नर एडवोकेट जनरल की नियुक्ति कर सकता है। उसकी योग्यता इतनी होनी चाहिए कि वह हाईकोर्ट का न्यायाधीश बनाया जा सके। उसका वेतन गवर्नर निश्चित करता है और वह गवर्नर की इच्छा तक काम करता है। प्रान्तीय धारासभा में बैठने, बोलने तथा वाद-विवाद में भाग लेने का उसे पूरा अधिकार है; परंतु वह धारा-सभा में मत नहीं दे सकता।

परिशिष्ट (१)

पूर्ण वा सीमित पृथक क्षेत्र

सम्राट अपने आर्डर इन कौंसिल के द्वारा प्रान्त के किसी भाग को पूर्ण या सीमित पृथक क्षेत्र घोषित कर सकता है। ये पृथक क्षेत्र पूर्ण रूपेण या किसी सीमित अंश तक नये सुधारों से मुक्त रहेंगे।

गवर्नर जनरल की आज्ञानुसार गवर्नर इन क्षेत्रों के सुचारु शासन का प्रबंध करेगा।

पृथक क्षेत्रों को चुनने में भारत सरकार ने अपना सिद्धान्त इस तरह रखा है—

(१) पूर्ण पृथक क्षेत्र विशेषकर सीमाप्रान्त वा आसाम की सीमा पर स्थित क्षेत्र हैं, जो अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण प्रान्त के दैनिक जीवन से दूर हैं, जैसे मद्रास के पश्चिमी किनारे पर लक्काडिव और मिनिवी द्वीप-समूह तथा पंजाब के उत्तरी भाग की स्पिति और लाहौल।

(२) सीमित पृथक क्षेत्र :—इन क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करने में भारत

सरकार ने प्रायः यह प्रयत्न किया है कि जितनी आदिम वा असभ्य जातियाँ हों वे उसके भीतर आ जावें और ऐसी सीमाएं जहाँ तक हों सीधी और सरल हों।

ये पृथक क्षेत्र १६३५ के एक्ट की नवीनता नहीं है। १८७४ के शेडूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट के अनुसार भी बहुत से भाग केन्द्रीय वा प्रान्तीय धारा-सभाओं और न्यायालयों के शासन से मुक्त कर दिये गये थे। मोंटफोर्ड सुधार में भी कुछ "पिछड़े हुए भाग" १६१६ के सुधारों से वंचित कर दिये गये थे। "पृथक क्षेत्र" का नामकरण सबसे पहले साइमन कमीशन रिपोर्ट द्वारा हुआ था और ज्वाइंट कमेटी ने प्रथम बार इन क्षेत्रों को मंत्रियों के शासन से मुक्त गवर्नर के शासन के आधीन रखने का विचार प्रगट किया था।

डाक्टर हटन ने जो १६३१ की जन-गणना के अध्यक्ष थे, भारतीय व्यवस्थापिका सभा में आसाम के प्रतिनिधि के नाते भारत सरकार का दृष्टि-कोण सामने रखते हुए १६३६ में कहा था कि आसाम के पृथक क्षेत्रों का निर्माण वहाँ के लोगों की अज्ञानता के कारण नहीं है प्रत्युत इसका मुख्य कारण पहाड़ी जातियों का मैदान में रहने वाली जातियों के प्रति अविश्वास है। पहाड़ी लोगों को डर है कि मैदानी लोगों का बहुसंख्यक मत उनके आर्थिक अधिकार (यथा लगान, वन-संपत्ति और मछली मारने के व्यवसाय) पर घातक हो सकता है। दक्षिण भारत के द्वीपों के ऊपर अपना मत प्रगट करते हुए उन्होंने कहा था कि कोई भी प्रतिनिधि इन सवा सौ से ढाई सौ मील समुद्र में स्थित निर्वाचन क्षेत्रों से संबंध नहीं रख सकता है जहाँ कलेक्टर तक दो साल में एक बार दौरा कर पाता है। साथ ही भाषा और बोलियों की अड़चनें भी काफी हैं। कुछ गाँवों में तो भाषा गली-गली में बदलती है। इस कारण पहाड़ी जातियों के बिना रस्म-रिवाज जाने हुए कानून बनाना विद्रोह की आग सुलगाना है। ऐसे विद्रोहों को दबाने में बड़ा खर्च और समय लगता है। एक बार नागा पर्वत के विद्रोह को दबाने में ही २० लाख रुपयों का खर्च हुआ था।

"आर्थिक दृष्टि से भी इन पिछड़े हुए प्रान्तों में उन्नतिशील शासन लागू करना उचित नहीं मालूम पड़ता। पर्वतीय प्रदेश के ये निवासी जो अधिकतर

मंगोलियन जाति के हैं, भारतवासियों को उतना ही अधिक विदेशी समझते हैं जितना यूरोप निवासी को। भारत भूमि को सुरक्षित करने के लिए ही इन्हें विजित किया गया था, इस कारण सब से अच्छी बात यही है कि ज्यों-ज्यों इन देशों में सभ्यता का विकास होता जावे, त्यों-त्यों इनमें भी नया शासन लागू होता जावे।"

भारतीय विचारधारा इन पृथक क्षेत्रों के निर्माण के सदैव ही विरुद्ध रही है और इसी लिए भारतीय व्यवस्थापिका सभा ने गवर्नर जनरल से प्रार्थना की थी कि वह पहली जनवरी १९३७ तक इन पृथक क्षेत्रों को हटा दें, जिसमें पूरे भारतवर्ष में नया शासन प्रारम्भ हो सके। भारतवर्ष में वैसे ही एक बड़ा भू-भाग देशी रियासतों के भीतर इन सुधारों से वंचित है, अब और नये भागों को वंचित करना देश के लिए अहितकर है।

दिसंबर १९३६ के फैज़पुर अधिवेशन में कांग्रेस ने इन क्षेत्रों का घोर विरोध किया था, क्योंकि इन क्षेत्रों तथा चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों द्वारा जिनमें क़रीब २०७,९०० वर्गमील का क्षेत्रफल है और जिनमें क़रीब १ करोड़ ३० लाख आबादी है भारत के मुख्य भाग से अलग कर देने का प्रयत्न किया गया है। भारत को छोटे-छोटे भागों में बाँटने का यह प्रयत्न भारत की प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं के विकास में बाधक है। साथ ही इन क्षेत्रों पर पूर्ण अधिकार जमाकर भारत सरकार भारतीय जंगली और खनिज पदार्थों की सम्पत्ति की लूट मचाना चाहती है, और इन भागों के निवासियों को अन्य भारतीयों से अलग रखकर इनके साथ आसानी के साथ मनमाना अत्याचार और लूट-खसोट करना चाहती है। इस कारण कांग्रेस का यह दृष्टिकोण है कि सम्पूर्ण भारत में बिना किसी भेद-भाव के एक ही सी प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं का विकास किया जावे।

कांग्रेस मंत्रीमंडलों का आदिम जातियों के सुधार के कार्य और उनके हितों की चिन्ता इस बात का स्पष्ट सूचक है कि भारतीयों का शासन इन मुक्त क्षेत्रों के निवासियों के लिए घातक नहीं है और ब्रिटिश सरकार की यह आशंका निर्मूल है।

प्रान्तीय धारा-सभा

प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त में एक प्रान्तीय धारा-सभा होगी जिसमें सम्राट् का प्रतिनिधि गवर्नर होगा और

(१) बंगाल, बिहार, आसाम, संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बंबई के प्रान्तों में दो मंडल होंगे।

(२) अन्य दूसरे प्रान्तों में एक ही मंडल होगा।

दो मंडल

जिन प्रान्तों में दो मंडल हैं उनमें बड़ी धारा-सभा का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल और छोटी का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली रखा गया है। बड़ी धारा-सभा केवल नाम की ही बड़ी है इसके सदस्यों की संख्या कम होती है, और इसके अधिकार या इसका महत्व छोटी धारा-सभा से बहुत कम होता है। एक मंडलीय प्रान्तों में धारा-सभा लेजिस्लेटिव असेम्बली कह-लाती है।

१९१९ में मांटेग्यू चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट ने दो मंडलों की योजना पर विचार किया था परन्तु उन्होंने इसकी आवश्यकता नहीं समझी थी। प्रान्तीय धारा-सभा में दो मंडलों के बनाने का विचार सबसे पहले ह्वाइट पेपर में व्यक्त किया गया था जिसमें ज़मींदारों को प्रतिनिधित्व देने के लिए बंगाल, यू० पी० और बिहार में दो मंडल बनाने की सिफ़ारिश की गई थी। ज्वाइंट कमेटी ने मद्रास और बंबई के व्यवसायियों और पूँजीपतियों के हितों की चिंता कर इन दो प्रान्तों के नाम और जोड़े। बाद में हाउस आफ कामन्स में बहस होते समय इंग्लैंड वासियों का ध्यान आसाम के चाय व्यवसायियों की ओर गया इस कारण आसाम का नाम भी दो मंडलीक वाले प्रान्तों की फेहरिस्त में जोड़ दिया गया।

भारतीय विचार-धारा दो मंडलों के सदैव विरुद्ध रही है। सर तेज बहादुर सप्रू ने ज्वाइंट कमेटी को भेजे हुए मेमोरैंडम में इस बात की चर्चा की थी कि साइमन रिपोर्ट और भारत सरकार के भेजे हुए डिसपेच में दो मंडलों की स्थापना का नाम भी नहीं है। "यह सत्य है कि जहाँ भी बड़े ज़मींदार हैं वहाँ दूसरे मंडल बनाने की माँग की गई है। परन्तु इस माँग की सिफ़ारिश साधारण जनमत द्वारा नहीं की गई है। मुझे स्वयं व्यक्तिगत रूप से इस बात में गंभीर संदेह है कि ये दूसरे मंडल ज़मींदारों या इन अनुदार वर्गों के हितों की ठीक-ठीक रक्षा भी कर सकेंगे। साथ ही मुझे इसमें भी बहुत अधिक सन्देह है कि हमारा इस तरह बना हुआ आज का ज़मींदार वर्ग काफ़ी तादाद में इतने व्यक्ति भी दे सकेगा जो अन्य देशों के बड़े मंडल के सदस्यों के समान अपना कार्य अच्छी तरह से कर सके। न मुझे इसी बात पर विश्वास होता है, जैसा सर मेलकम हेली को होता दिखाई देता है, कि हम व्यवसायी वर्गों और रिटायर्ड न्यायाधीशों में से ठीक प्रकार के आदमियों को चुनकर यह समस्या हल कर सकेंगे। यदि दूसरे मंडल का काम पुनर्विचार करने का होगा तो मुझे आशा नहीं है कि हमारे भारतीय प्रान्तों से यह उम्मेद हो सकती है। और यदि उनका काम शीघ्र और बिना सोचे हुए पहले मंडल द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों में बाधा डालना है तो हमें इस ख़तरे की भी उपेक्षा

न करना चाहिये—और यह ख़तरा कोई काल्पनिक ख़तरा नहीं है—कि ये दूसरे मंडल बड़ी अच्छी तरह से सारे उन्नतिशील सामाजिक प्रस्तावों में बाधा डालेंगे और जनमत पोषक छोटे मंडल और जनता के विचारों से संघर्ष उपस्थित करेंगे। इसके साथ एक यह भी प्रश्न है जिसे हमें भूलना न चाहिये कि दूसरे मंडल की स्थापना से प्रान्तीय शैली पर भी काफ़ी असर पड़ेगा।" लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने भी पालियामेंट में दूसरे मंडल के बनाने वाले प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा था कि "भारत को अनुदार प्रस्तावों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी उदार और साहसिक प्रस्तावों की। भारतीय रूढ़िगत भूमि अधिकार, ग़रीबी, कृषकों और मज़दूरों की हीन अवस्था, जातीय परम्परा आदि हमारी भौतिक उन्नति की इन सब बाधाओं को शीघ्र हटाने की आवश्यकता है। कोई भी भारत की आर्थिक उन्नति रोकना नहीं चाहता तब फिर क्यों ये दूसरे मंडल नियुक्त किये जा रहे हैं?" लार्ड हैलीफैक्स ने भी बड़ी सभा को बेकार बताया है। उनके विचार से गवर्नर के विशेषाधिकारों के सामने बड़े मंडल का कोई भी महत्व नहीं है।

इन सब बातों के होते हुए भी दो मंडलों की नये शासन-विधान में आवश्यकता समझी गई और वे ६ प्रान्तों में बना दिये गये। कहा यह गया कि प्रान्तीय धारा-सभा के बढ़ जाने से एक मंडल काफ़ी न होगा, साथ ही जनता के अधिकार भी बढ़ जाने से यह आवश्यक है कि एक मंडल और बनाकर कुछ अल्पसंख्यक जातियों और वर्गों के हितों की रक्षा की जावे। हमारे प्रान्त विस्तार में इतने अधिक बड़े हैं कि सभी प्रकार के विचार को प्रतिनिधित्व देने के लिए दूसरा मंडल आवश्यक है।

दोनों मंडलों की बनावट देखते हुए यह आशंका होती थी कि दोनों सभायें एक दूसरे की विरोधी न बन बैठें क्योंकि एक मंडल तो उन्नतिशील व्यक्तियों से बना होगा और दूसरा अनुदार रुचि वाले लोगों से। छोटी सभा आम जनता का प्रतिनिधित्व करती है और इस कारण उसका ध्यान आम जनता के हित की ओर होगा। बड़ी सभा धनी-मानी लोगों के हित की चिन्ता करेगी—क्योंकि यह बड़े लोगों की संस्था है। सौभाग्यवश इन कुछ

वर्षों के बीच ऐसी कोई परिस्थिति नहीं आई, केवल यू० पी० में कचहरियों की फीस में सुधार करने वाले एक्ट के बारे में दोनों धारा-सभाओं में विरोध हो गया था।

रचना

धारा-सभाओं के सदस्यों की संख्या उस प्रान्त की जन संख्या के आधार पर एक्ट में ही निर्धारित कर दी गई है। लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों की संख्या लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या की अपेक्षा अधिक है। निम्न तालिका से प्रत्येक प्रान्त की धारा-सभा के सदस्यों की संख्या मालूम की जा सकती है।

प्रान्त	लेजिस्लेटिव असेम्बली	लेजिस्लेटिव कौंसिल
मद्रास	२१५	५४ से ५६
बंबई	१७५	२९ से ३०
बंगाल	२५०	६३ से ६५
संयुक्त प्रान्त	२२८	५८ से ६०
पंजाब	१७५	———
बिहार	१५२	२९ से ३०
मध्यप्रान्त और बरार	११२	———
आसाम	१०८	२१ से २२
सीमा प्रान्त	५०	
उड़ीसा	६०	
सिंध	६०	

इस प्रकार बंगाल की लेजिस्लेटिव असेम्बली की संख्या सबसे अधिक है और सीमा प्रान्त की सबसे कम। प्रत्येक प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली की संख्या भिन्न जातियों और हितों में विभाजित कर दी गई है। ये जातियाँ इस प्रकार हैं—मुसलमान, सिख, भारतीय ईसाई, ऐंग्लोइंडियन, यूरोपियन और अन्य (साधारण)। "अन्य जातियों" में हिन्दू, पारसी, जैन, हरिजन और

अन्य छोटी-छोटी जातियाँ भी सम्मिलित हैं। प्रत्येक जाति को सदस्यों की एक निश्चित संख्या कानून द्वारा दे दी गई है। हरिजनों की संख्या भी निश्चित कर दी गई है। परन्तु वह संख्या पूना पेक्ट के अनुसार अन्य वा साधारण जाति में सम्मिलित रहती है। इसके अलावा इन हितों वा वर्गों की संख्या भी निश्चित कर दी गई है—व्यवसाय, ज़मींदार, विश्वविद्यालय, मज़दूर, महिला। महिलाओं की निश्चित संख्या का वर्गीकरण साम्प्रदायिकता के आधार पर फिर किया गया है। इस प्रकार स्त्रियों के निर्वाचन में भारतीय स्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध साम्प्रदायिकता का विष फैलाया गया है।

लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या केवल साम्प्रदायिकता के आधार पर हुई है। उसमें अन्य हितों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अवसर नहीं दिया गया है। पृष्ठ ४३ और ४४ की तालिका से सदस्यों की संख्या का वर्गीकरण स्पष्ट हो जावेगा।

भिन्न-भिन्न अल्पसंख्यक जातियों और वर्गों की संख्या निश्चित करने का उद्देश्य उन जातियों और वर्गों के हितों की रक्षा करना है। और यदि यह संख्या अल्पसंख्यक वर्गों की जन-संख्या के आधार पर निश्चित की जावे तो इसका फल अच्छा हो सकता है। परन्तु यहाँ पर ब्रेल्सफोर्ड साहब के शब्दों में "प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग को व्यवस्थित रूप से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया है।" इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ मुसलमान, यूरोपियन, एंग्लोइंडियन या भारतीय ईसाई अल्पसंख्या में हैं वहाँ उनकी संख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधियों की संख्या दी गई है। परन्तु हिन्दुओं के साथ ज़्यादती हुई है। बंगाल और पंजाब में जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं वहाँ उनके प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जन-संख्या के अनुपात में कम है। पंजाब में हिन्दुओं की संख्या प्रान्त की पूरी जन-संख्या की २८.३ फी सदी है परन्तु उन्हें धारा-सभा में २४.३ फी सदी ही प्रतिनिधित्व दिया गया है। बंगाल में हिन्दू पूरी जन-संख्या के ४४.८ प्रति शत हैं; परन्तु उन्हें केवल ३२ प्रतिशत सीटें ही मिली हैं। चाहिए तो यह था कि इन प्रान्तों में हिन्दुओं की सीटें रक्षित की जावें, परन्तु हुआ उल्टा ही है। इन प्रान्तों में बहुसंख्यक मुसलमानों की सीटें रक्षित की गई हैं।

प्रान्तीय असेम्बलियों की रचना

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
		साधारण स्थान												महिलाओं के स्थान				
प्रान्त	कुल स्थान	कुल साधारण स्थान	दलित जातियों के लिए सुरक्षित स्थान	असभ्य ज़िलों और जातियों के प्रतिनिधियों का स्थान	सिक्ख	मुसलमान	एंग्लोइंडियन	यूरोपियन	भारतीय ईसाई	वाणिज्य व्यवसाय आदि	ज़मींदार	विश्वविद्यालय	मज़दूर	साधारण	सिक्ख	मुसलिम	एंग्लोइंडियन	भारतीय ईसाई
१. मद्रास	२१५	१४६	३०	१	—	२८	२	३	८	६	६	१	६	६	—	१	—	१
२. बम्बई	१७५	१४४	१५	१	—	२९	२	३	३	७	२	१	७	५	—	१	—	—
३. बंगाल	२५०	७८	३०	—	—	११७	३	११	२	१९	५	२	८	२	—	२	१	—
४. संयुक्त प्रान्त	२२८	१४०	२०	—	—	६४	१	२	२	३	६	१	३	४	—	२	—	—
५. पंजाब	१७५	४२	८	—	३१	८४	१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	—	—
६. बिहार	१५२	८६	१५	७	—	३९	१	२	१	४	४	१	३	३	—	१	—	—
७. मध्यप्रान्त और बरार	११२	८४	२०	१	—	१४	१	१	—	२	३	१	२	३	—	—	—	—
८. आसाम	१०८	४७	७	९	—	३४	—	१	१	११	—	—	४	१	—	—	—	—
९. पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	५०	९	—	—	३	३६	—	—	—	—	२	—	—	—	—	—	—	—
१०. उड़ीसा	६०	४४	६	५	—	४	—	—	१	१	२	—	१	२	—	—	—	—
११. सिंध	६०	१८	—	—	—	३३	—	२	—	२	२	—	१	१	—	१	—	—

प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों की रचना

प्रान्त	साधारण	मुसलमान	यूरोपियन	भारतीय ईसाई	असेम्बलों द्वारा निर्वाचित	गवर्नर द्वारा मनोनीत	योग
मद्रास	३५	७	१	३	—	८ से १० तक	५४ से ५६ तक
बंबई	२०	५	१	—	—	३ से ४ तक	२६ से ३० तक
बंगाल	१०	१७	३	—	२७	६ से ८ तक	६३ से ६५ तक
संयुक्त प्रान्त	३४	१७	१	—	—	६ से ८ तक	५८ से ६० तक
बिहार	६	४	१	—	१२	३ से ४ तक	२६ से ३० तक
आसाम	१०	६	२	—	—	३ से ४ तक	२१ से २२ तक

निर्वाचन पद्धति

लेजिस्लेटिव असेम्बली के सभी सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं, उनमें कोई नामज़द नहीं होता। चुनाव प्रत्यक्ष होते हैं और साम्प्रदायिकता के आधार पर। प्रत्येक जाति अलग-अलग अपनी ही जाति के प्रतिनिधि चुनती है। बंबई में मरहठा और अन्य प्रान्तों में हरिजनों का निर्वाचन पूना पेक्ट के आधार पर होता है और उसकी कार्यवाही इस प्रकार होती है। हरिजन प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित तो होती है, परन्तु वह "अन्य जातियों" के साथ ही बताई जाती है। हरिजनों के निर्वाचन में दो चुनाव होते हैं—प्राथमिक और द्वितीय। प्राथमिक निर्वाचन में प्रत्येक प्रतिनिधि पीछे चार व्यक्तियों का चुनाव हरिजनों द्वारा होता है। फिर इन चार व्यक्तियों में से एक व्यक्ति हिन्दू और हरिजन की सम्मिलित वोटिंग द्वारा चुना जाता है। यही व्यक्ति हरिजनों का प्रतिनिधि होता है। इस प्रकार के निर्वाचन से केवल वही हरिजन प्रतिनिधि चुने जाते हैं, जिनमें हरिजनों का विश्वास रहता है, क्योंकि प्राथमिक निर्वाचन में केवल हरिजन ही मत देने का अधिकार रखते हैं। साथ ही इसमें साम्प्रदायिकता का भी डर नहीं है, क्योंकि द्वितीय चुनाव में हिन्दू और हरिजन सम्मिलित चुनाव करते हैं।

लेजिस्लेटिव कौंसिल में अधिकांश निर्वाचित सदस्य रहते हैं और कुछ गवर्नर द्वारा नामज़द। निर्वाचित सदस्य साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र द्वारा ही चुने जाते हैं। बंगाल और बिहार में कुछ सदस्य लेजिस्लेटिव असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं। इस प्रकार इन प्रान्तों की धारा-सभा में अप्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्य भी रहते हैं।

लेजिस्लेटिव असेम्बली की अवधि पाँच वर्ष की है। यदि गवर्नर चाहे तो इसे पाँच वर्ष के पहले भंग भी कर सकता है। परन्तु वह उसकी आयु नहीं बढ़ा सकता। असेम्बली का सभापति स्पीकर कहलाता है और वह असेम्बली के सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

लेजिस्लेटिव कौंसिल कभी भी समाप्त नहीं होती, परन्तु उसके एक तिहाई

सदस्य हर तीसरे वर्ष निकलते जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्य आते जाते हैं। इस प्रकार ६ वर्ष में लेजिस्लेटिव कौंसिल बिना समाप्त हुए पूरी बदल जावेगी। कौंसिल अपना एक सभापति भी चुनती है।

निर्वाचकों की योग्यताएँ

प्रान्तीय धारा-सभा के निर्वाचकों की योग्यताएँ १६३५ के एक्ट के अन्तर्गत ऑर्डर-इन-कौंसिल-द्वारा बनाई गई हैं। ये योग्यताएँ भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु लेजिस्लेटिव कौंसिल की शर्तें असेम्बली की अपेक्षा सभी जगह कठोर हैं। गणना के अनुसार भारतवर्ष में करीब जन-संख्या के १४% या क़रीब ३ करोड़ ५० लाख आदमी असेम्बली के निर्वाचक हैं। इनमें ६० लाख स्त्रियाँ हैं। नवीन एक्ट के पूर्व प्रान्तीय मतदाताओं की संख्या केवल ८७.४ लाख या ब्रिटिश भारत की ३% ही थी। निर्वाचन की शर्तें लार्ड लोदियन कमेटी की सिफ़ारशों पर बनाई गई हैं। इस निर्वाचन कमेटी को यह काम सौंपा गया था कि निर्वाचन की कौन-कौनसी शर्तें रखी जावें, जिससे कम से कम साइमन कमीशन द्वारा रखी गई १०% और अधिक से अधिक गोलमेज़ द्वारा चाही गई २५% आबादी को मताधिकार मिल सके।

निर्वाचन के पहले निर्वाचकों की एक सूची बनाई जाती है। जिसका नाम इस सूची में रहता है वही वोट दे सकता है। इस सूची में नाम लिखाने के लिए ६ शर्तें बनाई गई हैं इनमें से कोई न कोई शर्त निर्वाचक को अवश्य पूरी करनी पड़ती है। प्रायः सभी प्रान्तों में ये शर्तें किसी न किसी रूप में लगाई गई हैं। ये शर्तें इस प्रकार हैं :—

(१) निवास-संबंधी

(२) कर-संबंधी

(३) संपत्ति-संबंधी

(४) शिक्षा-संबंधी

(५) सरकारी नौकरी-संबंधी

(६) स्त्रियों के लिए विशेष शर्तें।

कौंसिल के निर्वाचकों की योग्यताएँ असेम्बली के निर्वाचकों से कुछ श्रेष्ठ हैं। संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के निर्वाचकों की योग्यताएँ इस प्रकार हैं:—

(१) मतदाता अपने निर्वाचन क्षेत्र में स्थायी रूप से या कभी-कभी रहता अवश्य हो। इस निर्वाचन क्षेत्र में उसका निजी मकान होना आवश्यक है।

(२) साधारण योग्यताएँ:

(अ) जिसने गत वर्ष ४०००) या इससे अधिक आयकर में दिया हो।

(आ) जिसे राय बहादुर, खान बहादुर, सरदार बहादुर या इसी तरह की कोई और उपाधि मिली हो।

(इ) जो २५०) मासिक सरकारी पेंशन पाता हो।

(ई) जो ब्रिटिश भारत की किसी धारा-सभा के सदस्य हों अथवा रहे हों, या किसी कार्यकारिणी के सदस्य या मंत्री रहे हों या किसी विश्वविद्यालय के चांसलर, वाइस चांसलर, फेलो प्रो० वाइस चांसलर या कोर्ट वा सेनेट के सदस्य हों अथवा रहे हों, जो संघ-न्यायालय, हाईकोर्ट, चीफ़कोर्ट अथवा जुडीशियल कमिश्नर के कोर्ट के न्यायाधीश हों या रहे हों। जो संयुक्त प्रान्त की किसी म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या केन्द्रीय सहकारी समिति के ग़ैर सरकारी सभापति हों या रहे हों।

(उ) जो सालाना १०००) या इससे अधिक मालगुज़ारी में देते हों।

(ऊ) जो १०००) सालाना तक की भूमि माफ़ी में जोतते हों।

(ए) जो कम से कम १५००) सालाना के काश्तकार हों।

(३) यदि ऊपर लिखी शर्तों में से किसी एक शर्त को कोई महिला पूरी करती हो तो वह भी निर्वाचक हो सकती है। उनकी सुविधा के लिए निम्नलिखित कुछ और भी सरल योग्यताएँ निश्चित की गई हैं। जिन व्यक्तियों में निम्नलिखित योग्यताएँ पाई जाती हैं, उनकी पत्नियाँ भी मताधिकारी हैं:—

(अ) जिन्होंने गत वर्ष दस हज़ार रुपए या इससे अधिक आयकर में दिये हों।

(आ) जो ५०००) सालाना के मालगुज़ार हों।

(इ) जो ५०००) सालाना मालगुज़ारी की ज़मीन माफ़ी में रखते हों।

(ई) जिसे राय बहादुर, खाँ बहादुर, सरदार बहादुर, दीवान बहादुर आदि इसी प्रकार की पदवी मिली हो।

(उ) जो २५०) या इससे अधिक सरकारी पेंशन पाते हों।

(४) हरिजनों को भी कुछ विशेष सुविधाएँ दी गई हैं। उनके लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निश्चित की गई हैं:—

(अ) जिसने गत वर्ष २०००) या इससे अधिक आय-कर दिया हो।

(आ) जो २००) सालाना मालगुज़ारी की ज़मीन माफ़ी में रखता हो।

(इ) जो ५००) या अधिक का काश्तकार हो।

(ई) जिसे गवर्नर की ओर से कोई उपाधि मिली हो।

छोटी धारा-सभा के निर्वाचकों की योग्यताएँ बड़ी धारा-सभा के निर्वाचकों से कुछ निम्न होती हैं। संयुक्त प्रान्त में ये योग्यताएँ इस प्रकार हैं।

प्रत्येक निर्वाचक अपने निर्वाचन क्षेत्र में निवास अवश्य करता हो और निम्नलिखित शर्तों में से किसी एक को पूरा करता हो:—

(१) जो १५०) वार्षिक म्युनिसिपल टैक्स देता हो।

(२) जो सरकार को आय-कर देता हो अर्थात् जिसकी आय २०००) सालाना या इससे अधिक हो।

(३) जो २४) सालाना के किराये के मकान में रहता हो या जिसका इतने ही किराये का निजी मकान हो।

(४) जो कम से कम ५) सरकारी लगान देता हो या १०) का काश्तकार हो।

(५) जो कम से कम ४ दर्जा पास हो या इसी के बराबर कोई दूसरी परीक्षा पास हो।

(६) जो सम्राट् की स्थायी सेना से अवकाश-ग्रहीत हों या पेंशन पाते हों या बिना कमीशन के अफ़सर या सिपाही हों।

यदि ऊपर लिखी शर्तों में से किसी एक शर्त को कोई महिला पूरी करती

हो तो वह भी निर्वाचक हो सकती है। उनकी सुविधा के लिए निम्नलिखित कुछ और भी सरल योग्यताएँ स्त्रियों के लिए निश्चित की गई हैं।

(१) जो सम्राट की स्थायी सेना के अफ़सर या बिना कमीशन के अफ़सर या सैनिक की पेंशन पाने वाली विधवाएँ वा माता हों।

(२) जो निर्धारित सीमा तक साक्षर हों।

(३) जो ऐसे व्यक्तियों की पत्नियाँ हों, जिनमें निम्नलिखित योग्यताएँ हों :—

(अ) जो अपने निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम ३६) सालाना मकान किराया देता हो। या इतनी ही क़ीमत का एक निजी मकान रखता हो।

(आ) जो २००) सालाना आमदनी पर म्युनिसिपैलिटी को टेक्स देता हो। या सरकारी इनकमटेक्स लेता हो।

(इ) जो कम से कम २५) सालाना सरकारी मालगुज़ारी देता हो।

(ई) जो कम से कम ५०) का काश्तकार हो।

(उ) जो सम्राट की स्थायी सेना से अवकाश-ग्रहीत हो या पेंशन पाता हो या बिना कमीशन का अफ़सर या सिपाही हो।

सदस्यों की योग्यताएँ

प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्य निर्वाचित होने के लिए निम्नलिखित साधारण योग्यता होनी चाहिए :—

(१) प्रत्येक सदस्य या तो ब्रिटिश प्रजा हो अथवा संघ में सम्मिलित देशी रियासत की प्रजा हो और यदि किसी प्रान्तीय धारा-सभा में नियत हो, तो देशी राज्य के नरेश भी निर्वाचित हो सकते हैं।

(२) जिसकी आयु लेजिस्लेटिव के सदस्य बनने के लिए कम से कम २५ वर्ष हो और कौंसिल के सदस्य बनने के लिए ३० वर्ष हो।

(३) अपने निर्वाचन क्षेत्र में मताधिकारी अवश्य हो।

अधिवेशन

प्रान्त के एक या दोनों मंडलों का वर्ष में कम से कम एक अधिवेशन होना आवश्यक है और इस अधिवेशन की अन्तिम बैठक और दूसरे की पहली बैठक में १२ माह वा इससे अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। इस नियम के भीतर गवर्नर कभी भी अपने स्वतंत्र अधिकार में

(१) जो स्थान और समय वह निश्चित करे, उस पर एक या दोनों मंडलों की बैठक बुला सकता है।

(२) उनकी बैठक समाप्त कर सकता है।

(३) छोटी धारा-सभा को भंग कर सकता है।

गवर्नर का भाषणाधिकार

गवर्नर अपने स्वतंत्र अधिकार में धारा-सभा के किसी भी मंडल में भाषण दे सकता है और उसके सदस्यों की उपस्थिति माँग सकता है। वह धारा-सभा में रखे गए वा भेजे गए प्रस्ताव के साथ अपने विचार की सूचना भी भेज सकता है और जिस मंडल के पास यह सूचना भेजी जाती है वह गवर्नर के विचारों पर जितनी शीघ्रता से हो सके, विचार करती है।

मंत्रियों और एडवोकेट जनरल के अधिकार

प्रान्त के मंत्री वा एडवोकेट जनरल को प्रत्येक मंडल की या दोनों की सम्मिलित बैठक में बोलने और कार्यवाही में भाग लेने तथा यदि वह धारा-सभा की किसी कमेटी का सदस्य बनाया गया है, तो उस कमेटी का सदस्य बनने, उसमें बोलने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है। परन्तु एडवोकेट जनरल अपना मत नहीं दे सकते और मंत्री केवल जिस मंडल के वे सदस्य हैं उसी में मत दे सकते हैं।

असेम्बली की गणपूरक-संख्या (कोरम) उसके सदस्यों की संख्या का १/६ रखा गया है और कौंसिल की संख्या केवल दस।

स्थान खाली होना

कोई भी व्यक्ति एक ही समय में प्रान्तीय और धारा-सभा का सदस्य नहीं हो सकता। यदि कोई भी सदस्य बिना मंडल की अनुमति के ६० दिन तक उसकी बैठक से ग़ैर हाज़िर रहे तो मंडल उसके स्थान को ख़ाली घोषित कर देगा। इन ६० दिनों की गणना में उन दिनों को न जोड़ा जावेगा, जब कि मंडल की बैठक कम से कम चार दिनों के लिए भंग रही हो।

सदस्यों के अधिकार

प्रत्येक सदस्य को प्रान्तीय धारा-सभा में अपने विचार प्रगट करने का अधिकार है। इन विचारों के प्रगट करने और वोट देने में तथा उस सदस्य द्वारा, मंडल की अनुमति लेकर धारा-सभा की या उसकी बैठक की प्रकाशित रिपोर्ट, भाषण, मत, निर्णय और कार्यवाही पर कोई भी न्यायालय सदस्य के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं कर सकता।

सदस्यों के अन्य अधिकार प्रान्तीय धारा-सभा स्वयं निर्धारित करती है। धारा-सभा को न्याय करने का अधिकार नहीं है। धारा-सभा किसी क़ानून को तोड़ने या हुड़दंग मचाने पर किसी भी सदस्य को अपने पद से हटा सकती है।

१९३५ के एक्ट के अनुसार भाषण की स्वतंत्रता पर निम्नलिखित प्रतिबंध लगाए गए हैं :—

(१) अपने कार्यों को पूरा करने में संघीय न्यायालय, प्रान्त या देशी रियासतों के हाईकोर्ट के अधिकारों के ऊपर कोई भी टीका-टिप्पणी नहीं की जा सकती।

(२) यदि गवर्नर अपने स्वतंत्र अधिकार में इस बात पर ज़ोर देता है कि किसी उपस्थित किये हुए या किये जाने वाले प्रस्ताव या उसके किसी भाग को पेश करने, बदलने या उस पर बहस करने से उसके विशेष उत्तरदायित्व पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव पड़ता है, या उसके प्रान्त की या उसके किसी भाग की शान्ति और व्यवस्था भंग

होने की आशंका है तो वह उस प्रस्ताव से संबंध रखनेवाली कार्य-वाही को बन्द कर सकता है।

(३) अन्य प्रतिबन्ध जो मंडलों की कार्यवाही संबंधी नियमों द्वारा लगाये गये हों।

नियम

प्रत्येक मंडल अपने कार्य-संचालन के लिए नियम बनाता है, परन्तु गवर्नर अपने स्वतन्त्र अधिकार में सभापति वा स्पीकर से सलाह करने के बाद निम्नलिखित विषयों के लिए नियम बना सकता है :—

(१) अपने निजी और स्वतन्त्र अधिकार से सम्बन्ध रखने वाले विषयों की कार्यवाही के लिए

(२) आर्थिक काम को ठीक समय पर समाप्त करने के लिए

(३) किसी देशी रियासत से संबंध रखनेवाले विषय पर वादाविवाद करने या प्रश्न पूछने को रोकने के लिए। यदि इस प्रकार का कोई विषय प्रान्तीय सरकार, प्रान्त निवासी या किसी ब्रिटिश प्रजा के हित से संबंध रखता है तो वह इन विवादों या प्रश्नों को नहीं रोकेगा।

(४) निम्नलिखित विषयों पर वादाविवाद या प्रश्न पूछने को रोकने के लिए :—

(अ) सम्राट अथवा गवर्नर जनरल का किसी बाहरी रियासत वा अन्य प्रान्तों से सम्बन्ध रखने वाले विषय।

(आ) आदिम निवासियों के क्षेत्र।

(इ) किसी पृथक क्षेत्र के शासन सम्बन्धी।

(ई) किसी देशी रियासत के राजा या उनके कुटुम्ब के अन्य सदस्यों के व्यक्तिगत चरित्र सम्बन्धी।

कोई भी प्रस्ताव जब दोनों मंडलों द्वारा पास होकर गवर्नर के हस्ताक्षर पाकर प्रान्त के सरकारी गज़ट में प्रकाशित हो जाता है तो वह क़ानून

कहलाता है। यदि मंडलों में कभी मतभेद होता है और इस मतभेद का १२ माह तक निर्णय नहीं हो पाता, तो गवर्नर दोनों मंडलों की सम्मिलित बैठक बुलाता है। और यदि प्रस्ताव इस सम्मिलित बैठक में बहुसंख्या से पास हो जाता है तो वह पास समझा जाता है। प्रस्ताव किसी भी मंडल में उपस्थित किया जा सकता है। केवल आर्थिक बिल छोटे मंडल में शुरू होते हैं।

आर्थिक बिल

आर्थिक बिल गवर्नर की सिफ़ारिश के बाद छोटे मंडल में शुरू होते हैं। प्रान्तीय-व्यय का ब्यौरा बताने वाला बजट दो भागों में विभक्त होता है—(१) "प्रान्तीय आमदनी पर होनेवाले खर्च का धन।" (२) अन्य खर्च। इन खर्च के ब्यौरों में वह भी धन बताया जाता है, जो गवर्नर के विशेष उत्तर-दायित्व को पूरा करने में आवश्यक है।

"प्रान्त की आय पर खर्च होनेवाले धन" निम्नलिखित हैं—इन पर धारा-सभा मत नहीं दे सकती।

(१) गवर्नर का वेतन और भत्ता तथा उसके दफ्तर के अन्य खर्च जो आर्डर इन कौंसिल द्वारा निश्चित हों।

(२) प्रान्तीय ऋण तथा उस पर व्याज, ऋण चुकाने की मद या ऋण लेने में होनेवाला खर्च।

(३) मंत्री या एडवोकेट जनरल के वेतन और भत्ते।

(४) हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते।

(५) पृथक क्षेत्रों के शासन में खर्च होनेवाला धन।

(६) किसी भी न्यायालय के निर्णय या आज्ञा के कारण खर्च होनेवाला धन।

(७) अन्य ऐसा धन जो प्रान्तीय धारा-सभा के निर्णय या १९३५ के एक्ट के अनुसार अमैती होवे।

कोई भी बिल धारा-सभा के भंग होने पर समाप्त नहीं समझा जावेगा। यदि वह बिल लेजिस्लेटिव कौंसिल द्वारा पास कर दिया गया है, और इ

बीच असेम्बली बरखास्त हो गई है तो वह बिल भी समाप्त नहीं समझा जावेगा। परन्तु यदि लेजिस्लेटिव असेम्बली ने उसे पास किया है तो असेम्बली के बरख़ास्त होने पर वह बिल समाप्त हो जावेगा। जहाँ पर लेजिस्लेटिव कौंसिलें भी हैं, वहाँ पर प्रस्ताव का दोनों मंडलों से पास होना आवश्यक है। यदि किसी प्रस्ताव में किसी मंडल ने कोई सुधार किया हो तो वह सुधार दूसरे मंडल द्वारा स्वीकृत होने पर ही बिल पास हो सकेगा।

यदि आर्थिक बिल या उसके विशेष उत्तरदायित्व से सम्बन्ध रखनेवाले बिल के ऊपर मतभेद हो, तो गवर्नर कभी भी सम्मिलित बैठक बुला सकता है। उस समय १२ माह की अवधि आवश्यक नहीं है। सम्मिलित बैठक में सभापति का आसन कौंसिल का सभापति ग्रहण करता है। उसकी अनुपस्थिति में अन्य कोई व्यक्ति, जो कार्यवाही के नियमों के आधार पर चुना जावे, सभापति बनाया जाता है।

दोनों मंडलों द्वारा पास होने पर बिल गवर्नर के पास जाता है, गवर्नर उस पर हस्ताक्षर कर उसे पास कर सकता है या उसे अपने स्वतंत्र अधिकार से अस्वीकृत कर सकता है, या गवर्नर जनरल की सलाह के लिए भेज सकता है।

आदेश-पत्र के १८वें पैराग्राफ़ में लिखा है कि गवर्नर निम्नलिखित विषयों पर अपनी स्वीकृति न देगा प्रत्युत इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्तावों को गवर्नर जनरल की सलाह के लिए भेज देगा।

(१) कोई भी क़ानून जिसका विषय ब्रिटिश भारत पर लागू पार्लियामेंट के किसी क़ानून को सुधार करना हो या ऐसे कानून के विरुद्ध हो।

(२) कोई भी क़ानून जिसके पास होने से हाईकोर्ट के अधिकारों पर कुछ भी धक्का लगता हो।

(३) कोई भी क़ानून जो परमनेंट सेटिलमेंट (Permanent settlement) का रूप बदलता हो।

(४) कोई भी बिल जिसके विषय में उसे सन्देह हो कि उसके पास होने से उसके निजी या स्वतन्त्र अधिकारों पर तो धक्का नहीं लगता।

इस प्रकार के बिल गवर्नर जनरल सम्राट के विचार के लिए भेज देगा।

सम्राट की अस्वीकृति

कोई भी बिल गवर्नर वा गवर्नर जनरल की स्वीकृति पाने पर सम्राट द्वारा स्वीकृति के १२ माह के अन्दर ही अस्वीकृत हो सकता है। गवर्नर इस अस्वीकृति की सूचना सरकारी गजट द्वारा जनता को दे देगा।

एक्ट में दी हुई यह धारा गवर्नर और गवर्नर जनरल के अधिकारों के प्रति अविश्वास का संकेत करती है, परन्तु इससे यही मालूम होता है कि ब्रिटिश सरकार कोई भूल होने पर उसको सुधारने का अधिकार अपने पास रखे है।

प्रान्तीय धारा-सभा के अधिकार और कर्तव्य

१९३५ के एक्ट के पूर्व भारतवर्ष में एकात्मक सरकार थी इस कारण प्रान्तों के अधिकार केंद्रीय सरकार द्वारा निर्धारित होते थे। परन्तु संघीय सरकार की स्थापना से ये प्रान्त केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र हैं। और उसके अधिकार शासन-विधान द्वारा निर्धारित हैं। संघीय शासन का प्रथम सिद्धान्त केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों का विभाजन है। दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतन्त्र रहते हैं। इस प्रकार १९३५ के शासन-विधान में केन्द्र और प्रान्त के शासन सम्बन्धी विषय अलग कर दिये गये हैं* और प्रान्त की धारा-सभा इन प्रान्तीय विषयों पर क़ानून बना सकती है।

प्रान्तीय धारा-सभा के अधिकार तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं।

(१) धारा-सम्बन्धी (२) आर्थिक-सम्बन्धी और (३) शासन-सम्बन्धी।

धारा संबंधी अधिकार

प्रान्तीय धारा-सभा निम्नलिखित विषयों पर क़ानून बना सकती है।

(१) सम्पूर्ण प्रान्तीय विषयों पर।

संघीय धारा-सभा को इस क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का या नियम बनाने का अधिकार नहीं है। केवल दो परिस्थितियों में ही संघीय सरकार प्रान्तीय विषयों पर नियम बना सकती है।

---

*देखिये परिशिष्ट—३

(अ) यदि दो या दो से अधिक प्रांतीय धारा सभायें संघ-धारा-सभा से किसी विषय पर नियम बनाने की प्रार्थना करें। इन नियमों में प्रान्त अपनी सुविधा अनुसार सुधार कर सकता है।

(आ) यदि गवर्नर जनरल गम्भीर परिस्थिति की घोषणा कर संघीय धारा-सभा को प्रान्तीय विषय पर नियम बनाने का अधिकार दे। ये नियम गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। प्रान्तीय धारा-सभा के अधिकारों में यह हस्तक्षेप स्वायत्त शासन के सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

(२) अन्य विषयों पर जो सम्मिलित सूची में दिए गए हैं।

कुछ विषय ऐसे होते हैं जिन पर संघीय और प्रान्तीय दोनों धारा-सभायें नियम बना सकती हैं। ऐसे विषय सम्मिलित सूची में दिए जाते हैं। चूँकि संघीय सरकार भी इन पर नियम बना सकती है इस कारण प्रान्तीय और संघीय धारा-सभा के नियमों में अन्तर या मतभेद हो सकता है। ऐसी हालत में प्रान्तीय धारा-सभा के वे नियम उस सीमा तक रद्द कर दिए जाते हैं जहाँ तक वे संघीय विषयों के प्रतिकूल हों। परन्तु यदि कोई प्रान्तीय नियम जिसका संघीय धारा-सभा के नियम से मतभेद हो और जो गवर्नर जनरल या सम्राट की सलाह के लिए भेजा गया हो और उसे उनकी स्वीकृति मिल गई हो तो वह संघीय नियम की परवाह न करते हुए केवल उसी प्रान्त में लागू रह सकता है।

(३) अवशिष्ट विषयों पर यदि गवर्नर जनरल अधिकार दे।

संघ सरकार में, जैसा हम कह आये हैं, शासन के विषयों का विभाजन संघीय, प्रान्तीय और सम्मिलित वर्गों में होता है; परन्तु नई समस्यायें नये विषयों को उत्पन्न कर सकती हैं। ये विषय अवशिष्ट विषय कहाये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र की संघ सरकार में अवशिष्ट विषयों का शासन वहाँ की रियासतों को मिला हुआ है। कनेडा की संघ सरकार में अवशिष्ट विषयों के शासन पर संघ सरकार का अधिकार

है। भारतवर्ष में इन अवशिष्ट विषयों पर गवर्नर जनरल का अधिकार है, वह अपने स्वतन्त्र अधिकार में यह निर्णय करेगा कि इन अवशिष्ट विषयों में किस विषय पर प्रान्त का अधिकार होगा और किस पर संघ सरकार का। गवर्नर जनरल का यह अधिकार राजनीति के सिद्धान्तों में एक नवीनता है; परन्तु यहाँ के साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण ही इस नवीनता को अपनाया गया है।

प्रान्तीय धारा-सभा के धारात्मक अधिकार कई प्रकार से सीमित हैं। कुछ प्रतिबन्ध तो उसकी प्रकृति के कारण ही हैं, उदाहरणार्थ (१) सत्तात्मक धारा-सभा न होने के कारण वह वैधानिक धारायें नहीं बना सकती। (२) वह संघीय विषय पर नियम नहीं बना सकती है।

अन्य प्रतिबन्ध कार्यवाही, वा गवर्नर के विशेषाधिकार से संबंध रखते हैं। ये प्रतिबंध मुख्य ये हैं :—

(१) प्रान्तीय धारा-सभा के प्रस्तावों पर गवर्नर बहस रोक सकता है।

(२) प्रान्तिय धारा-सभा को निम्न लिखित विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले क़ानून बनाने या प्रस्ताव रखने के लिए गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक है।

(अ) ब्रिटिश भारत पर लागू पार्लियामेंट का कोई एक्ट

(आ) अपने स्वतन्त्र अधिकार में गवर्नर जनरल द्वारा बनाया गया एक्ट वा आर्डिनेंस।

(इ) अन्य कोई विषय जिसमें गवर्नर जनरल अपने स्वतन्त्र अधिकार या निजी अधिकार में कार्य करता हो।

(ई) फ़ौजदारी कार्य-पद्धति की कार्यवाही जिसमें यूरोपियन प्रजा का सम्बन्ध हो।

(३) निम्नलिखित विषयों को प्रभावित करने वाले प्रस्ताव का सुधार उपस्थित करने के पूर्व गवर्नर की स्वीकृति लेना आवश्यक है।

(अ) अपने स्वतन्त्र अधिकार की हैसियत में बना हुआ गवर्नर का कोई भी एक्ट वा आर्डिनेंस।

(आ) पुलिस विभाग से सम्बन्ध रखने वाला एक्ट।

(४) गवर्नर के धारा सम्बन्धी अधिकार

(अ) आर्डिनेंस का अधिकार। गवर्नर दो प्रकार से आर्डिनेंस बना सकता है। (१) मंत्रियों की सलाह से :—ये आर्डिनेंस उस समय बनाये जाते हैं जब धारा-सभा की बैठक न हो रही हो। धारा-सभा की बैठक से ६ माह के बाद या यदि धारा-सभा इन्हें जल्दी हटा दे तो उस हटाने की तिथि से ये आर्डिनेंस समाप्त हो जाते हैं। यह आर्डिनेंस का अधिकार प्रायः सभी प्रजातन्त्र राज्यों में मंत्रियों को होता है और यह धारा-सभा के अधिकारों को सीमित नहीं करता है। इनसे केवल धारा-सभा की अनुपस्थिति में शासन का कार्य चलाया जाता है। (२) वे आर्डिनेंस जो गवर्नर अपने विशेषाधिकार को अमल में लाने के लिये धारा-सभा की बैठक होते हुए भी बनाता है। ये आर्डिनेंस ६ माह तक रहते हैं और इनकी अवधि भारत-सचिव की आज्ञा से ६ माह तक और बढ़ाई जा सकती है। यह आर्डिनेंस बनाने का अधिकार धारा-सभा के अधिकारों को सीमित करता है।

(आ) गवर्नर के एक्ट। गवर्नर अपनी विशेष ज़िम्मेवारियों को पूरा करने के लिए गवर्नर का एक्ट बना सकता है। ये एक्ट आसानी से बनाए जा सकते हैं। गवर्नर उन परिस्थितियों की सूचना के साथ जिनके कारण एक्ट की आवश्यकता है, प्रस्ताव या एक्ट का कलेवर जिस पर वह बाद में एक्ट बना सके, धारा-सभा के पास भेजता है। एक माह के बाद गवर्नर का वह प्रस्ताव एक्ट बन जाताहै। इस माह के भीतर गवर्नर के पास धारा-सभा अपने विचार भेज सकती है और गवर्नर उन विचारों के अनुरूप अपने मौलिक प्रस्ताव में परिवर्तन भी कर सकता है। इस एक्ट की जिम्मेवारी न तो मंत्रियों के ऊपर होती है और न धारा-सभा पर।

इस प्रकार हम भली भाँति कह सकते हैं कि प्रान्त की धारा-सभा के

धारा-सम्बन्धी अधिकार बहुत सीमित हैं। गवर्नर अपनी पूर्व-सम्मति न देकर, बीच ही में कार्यवाही रोककर, या अपनी अस्वीकृति से, या गवर्नर जनरल के विचार के लिए रखकर, या धारा-सभा के पास पुनर्विचार के लिए भेजकर धारा-सभा की कार्य-प्रणाली में रोड़े लगा सकता है। गवर्नर-जनरल भी कई बाधायें उपस्थित कर सकता है। कोई भी बिल जिन पर गवर्नर या गवर्नर-जनरल की स्वीकृति दे दी गई है, सम्राट द्वारा हटा दिया जा सकता है। गवर्नर, गवर्नर जनरल और सम्राट भारतीय जनता की उत्तरदायी नहीं, इस कारण धारा-सभा की स्वतन्त्रता बहुत ही सीमित कर दी गई है। इसके साथ ही साथ गवर्नर बिना धारा-सभा वा मंत्रियों की सलाह के स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार के क़ानून बना सकता है। इस प्रकार प्रान्त के प्रधान शासक को असीमित अधिकारों से विभूषित कर दिया गया है। धारा-सभा की परवाह न करते हुए गवर्नर, गवर्नर जनरल और सम्राट अपने मनचाहे नियम बना सकते हैं। या जनता के चाहे हुए नियमों में रोड़े लगा सकते हैं।

धारा सभा के आर्थिक अधिकार

प्रान्त की धारा-सभा को प्रान्त की आय व खर्च पर भी अधिकार दिया गया है।

(अ) आय संबंधी

प्रान्त को प्रान्तीय विषयों के ऊपर टेक्स लगाने का अधिकार है। टेक्स लगाने वाले प्रस्तावों के लिए गवर्नर की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। ये प्रस्ताव लेजिस्लेटिव असेम्बली में प्रारम्भ होते हैं। प्रायः अर्थ-मंत्री ही ये प्रस्ताव उपस्थित करता है। इसमें साधारण सदस्यों को प्रस्ताव उपस्थित करने या टेक्स की मद बढ़ाने का अधिकार नहीं है। जहाँ दोनों मंडल हैं वहाँ पर दोनों मंडलों से पास होकर वह गवर्नरके पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है।

(आ) व्यय सम्बन्धी

हर साल गवर्नर धारा-सभा के सामने सालाना आर्थिक कथन

(Annual Financial statement) उपस्थित करता है, जिसमें अलग-अलग दो खर्च के ब्यौरे बनाये जाते हैं। (१) "प्रान्त की आय के ऊपर होनेवाला ख़र्च" (२) अन्य ख़र्च।

कौन-सा ख़र्च किस मद का है—यह गवर्नर अपने स्वतंत्र अधिकार से तय करता है।

बजट के ऊपर दोनों मंडलों में बहस होती है। और केवल दूसरे प्रकार के ख़र्च माँग के रूप में लेजिस्लेटिव असेम्बली की वोट के लिए रखे जाते हैं। बड़े मंडल को इन पर वोट देने का अधिकार नहीं है। "प्रान्त की आय पर होनेवाला खर्च" अमैती है। इस पर धारा-सभा मत नहीं दे सकती है। हाँ बहस अवश्य कर सकती है परन्तु गवर्नर के वेतन, भत्ते और उसके दफ़्तर के ख़र्च पर बहस करने का भी अधिकार धारा-सभा को नहीं है। "अन्य ख़र्चों" की रक़में असेम्बली घटा सकती है या उन्हें अस्वीकार कर सकती है परन्तु यदि इससे गवर्नर के विशेषाधिकारों पर कोई धक्का लगता है तो वह पुरानी रक़मों को वापस कर सकता है।

इस प्रकार धारा-सभा के आर्थिक अधिकारों पर निम्नलिखित प्रतिबंध हैं:—

(१) अमैती व्यय पर ("प्रान्त की आय पर होनेवाले ख़र्च पर") उसे वोट देने का अधिकार नहीं।

(२) गवर्नर के वेतन, भत्ते और उसके दफ़्तर के ऊपर होने वाले ख़र्च पर बहस करने का उसे कोई अधिकार नहीं।

(३) मतात्मक व्यय की घटाई हुई या अस्वीकृत रक़मों को गवर्नर ठीक कर सकता है, यदि धारा-सभा के इस कार्य से उसके विशेषाधिकार पर प्रभाव पड़ता हो।

शासन संबंधी अधिकार

हम देख ही चुके हैं कि प्रान्त का बहुत सा कार्य उत्तरदायी मंत्रियों द्वारा होता है। इस उत्तरदायित्व के कारण धारा-सभा को कार्यकारिणी के ऊपर अधिकार है। मंत्री उसी समय तक अपने पद पर रहते हैं, जब तक उनके

साथ लेजिस्लेटिव असेम्बली का बहुमत रहता है। ज्योंहीं बहुमत का विश्वास इन मंत्रियों पर से हटा, त्यों ही इन्हें अपना त्याग-पत्र दे देना होता है। मंत्रियों के इस उत्तरदायित्व के कारण लेजिस्लेटिव असेम्बली शासन की बागडोर अपने हाथ में रखती है। धारा-सभा ही शासन की नीति बनाती है।

धारा सभा को मंत्री-मंडल से शासन-सम्बन्धी प्रश्न पूछने का भी अधिकार है, जिनके द्वारा वह शासन की बुराइयों को सब के सामने उपस्थित करती है।

साथ ही बजट पास करने का अधिकार असेम्बली को है और बिना अर्थ के कोई शासन कार्य नहीं हो सकता इस कारण शासन के भिन्न-भिन्न विभागों पर भी धारा-सभा का प्रभाव रहता है।

परन्तु हम देख ही चुके हैं कि गवर्नर ही प्रान्त का प्रधान शासक है और वह अपने स्वतन्त्र और निजी अधिकारों में पूर्ण स्वतन्त्र है। इन अधिकारों और विशेष उत्तरदायित्वों को पूरा करने में गवर्नर गवर्नर-जनरल को उत्तरदायी रहता है। हम यह भी देख चुके हैं कि ये विशेष उत्तरदायित्व इतने व्यापक शब्दों में व्यक्त किये गए हैं कि वे पूरे प्रान्त के शासन में हस्तक्षेप कर सकते हैं। इस कारण प्रान्त के शासन में धारा-सभा का अधिकार कितना रहे यह गवर्नर की इच्छा पर निर्भर है।

इस प्रकार प्रान्तीय धारा-सभा के अधिकार बहुत ही कम हैं। सभी क्षेत्रों में निरुत्तरदायी गवर्नर का शासन है। वह धारा-सभा के धारात्मक आर्थिक और शासन सम्बन्धी सभी अधिकारों में इस प्रकार बाधा डाल सकता है कि प्रान्तीय धारा-सभा एक अशक्त संस्था मात्र ही रह जाती है।

गवर्नर के ये अधिकार इतने विस्तृत हैं कि गवर्नर एक प्रकार से स्वयं एक स्वतन्त्र धारा-सभा है।

परन्तु शासन में विधान की धारायें उतनी महत्वपूर्ण नहीं, जितनी उसकी भावना होती है। हमारे १९३७ के बाद का इतिहास हमें यह स्पष्ट बता देता है कि गवर्नर यदि चाहे तो प्रान्तीय शासन को सच्चा स्वायत्त शासन बना सकता है और यदि वह चाहे तो धारा-सभा या मंत्रियों के सभी अधिकार बेकार कर सकता है।

स्वायत्त शासनः—एक दृष्टि

प्रान्तीय शासन विधान का अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ पर हम प्रान्तीय स्वायत्त शासन का मूल्य आँकने का प्रयत्न करेंगे। इन ७ वर्षों के शासन से हमें प्रान्तीय स्वायत्त शासन का असली रूप भी ज्ञात हो चुका है। अतएव पहले हम प्रान्तीय शासन का शास्त्रीय विवेचन करेंगे, तत्पश्चात् उसके व्यवहृत रूप का।

प्रान्तीय स्वायत्त शासन के लिये दो बातों की आवश्यकता है। (१) केन्द्रीय या अन्य बाह्य शासन से पूर्ण स्वतन्त्रता, (२) आन्तरिक शासन में उत्तरदायी सरकार की स्थापना।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिना बाह्य शासन से मुक्त हुए, उत्तरदायी सरकार की स्थापना असंभव है; परन्तु ये दोनों शर्तें हैं भिन्न-भिन्न। बाह्य शासन से मुक्त होते हुए भी प्रान्त में निरुत्तरदायी शासन हो सकता है।

१९३५ के एक्ट से प्रान्त में स्वायत्त शासन प्रारम्भ हो गया है तब क्या प्रान्त बाहरी शासन से मुक्त है? क्या वास्तव में केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय

विषयों में हस्तक्षेप नहीं करती ? क्या प्रान्त में धारा-सभा को उत्तरदायी होने-वाला मंत्रिमंडल ही सर्वोच्च कार्यकारिणी है या कोई अन्य स्वेच्छाचारी शासक शासन की बागडोर अपने हाथ में रखे है ? दुर्भाग्यवश प्रान्तीय शासन पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि उनके एकाकी प्रभाव से प्रान्त का स्वायत्त शासन पूर्णतया नष्ट हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि १९३५ के कानून के अनुसार प्रान्तों पर केन्द्र का शासनाधिकार बहुत ही कम हो गया है। जहाँ १९१९ के एक्ट के द्वारा प्रान्त के रक्षित विषयों पर केन्द्र का पूर्ण अधिकार था वहाँ १९३५ के कानून के द्वारा रक्षित और हस्तान्तरित विषयों का भेद मिटने से केन्द्र का शासना-धिकार प्रान्तीय विषयों पर नहीं रहा है। फिर भी प्रान्त केन्द्र के शासन से मुक्त नहीं है वह अभी भी प्रान्त के शासन में निम्नलिखित रूप में हस्तक्षेप कर सकता है।

(१) संघीय धारा-सभा प्रान्तीय सरकार को, या प्रान्त में रहने वाले अपने किसी भी कर्मचारी को, संघीय नियमों का पालन कराने का आदेश दे सकती है।

(२) प्रान्त का गवर्नर अपने स्वतन्त्र और निजी अधिकारों के उपयोग करने में गवर्नर जनरल को उत्तरदायी है और इस रूप में गवर्नर जनरल प्रान्त के शासन में हस्तक्षेप कर सकता है।

(३) गवर्नर जनरल के अन्य आदेशों को पालने का उत्तरदायित्व भी गवर्नर पर है।

(४) विशेष परिस्थितियों में गवर्नर जनरल संघीय धारा-सभा को प्रान्तीय विषयों पर नियम बनाने का आदेश दे सकता है।

इन ७ वर्षों में गवर्नर जनरल द्वारा प्रान्त में किये गये हस्तक्षेपों के हमें दो उदाहरण मिलते हैं एक तो यू० पी० और बिहार में राजनैतिक कैदियों के छोड़ने में और दूसरे सिंध के प्रधान मंत्री अल्लाबख्श के स्तीफ़ा देने में। गवर्नर जनरल के इस अधिकार की आलोचना करते हुए प्रोफेसर कीथ "भारतीय शासन विधान के इतिहास" में लिखते हैं कि यह अधिकार यदि

पूर्ण रूप से काम में लाया जावे तो प्रान्तीय स्वायत्त शासन कहीं का भी न रहेगा।*

उत्तरदायी शासन की दृष्टि से भी मंत्री मंडल प्रान्तीय शासन के लिए धारा-सभा को उत्तरदायी नहीं हैं। प्रान्त में जहाँ तक केन्द्रीय शासन के हस्तक्षेप का प्रश्न है—वहाँ तक मंत्री मंडल तो किसी प्रकार का उत्तरदायित्व ले ही नहीं सकता। साथ ही प्रान्तीय शासन में गवर्नर के उत्तरदायित्व और विशेषाधिकार मंत्री मंडल के उत्तरदायित्व के क्षेत्र को और भी सीमित कर देते हैं। गवर्नर जैसा हम देख ही चुके हैं प्रान्त का केवल नाम मात्र का अधिकारी नहीं है उसका अधिकार क्षेत्र विस्तृत है और वह प्रान्त में अमन चैन रखने, या व्यापारिक दुराभाव के नाम पर शासन के सभी विभागों में हस्तक्षेप कर सकता है। बंगाल और सिन्ध में गवर्नर द्वारा की गई इस मनमानी निरंकुशता और स्वेच्छाचार के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सर सैमुएल होर ने शायद इसीलिए कहा था कि "गवर्नर पर लादे गये ये उत्तरदायित्व शासन के पूरे क्षेत्र में फैले हुए हैं।"

इन सब प्रतिबन्धों से स्वायत्त शासन का महत्व बहुत घट जाता है। प्रान्त की धारा-सभा और मंत्री मंडल के अधिकार बहुत ही अधिक सीमित कर दिये गये हैं। वास्तव में १९३५ का एक्ट मॉर्ले मिन्टो द्वारा निर्धारित पथ पर कदम दो कदम ही आगे बढ़ता है। १९१९ में द्विविध शासन देकर यह घोषणा की गई थी कि प्रान्त में क्रमशः उत्तरदायित्व सरकार स्थापित करने की चेष्टा की जावेगी। वही चेष्टा ही १९३५ के एक्ट द्वारा हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रान्त में द्विविध शासन का अन्त हो गया है और हस्तान्तरित और रक्षित विषयों का भेद मिटा दिया गया है। प्रान्तीय विषयों पर प्रान्तों की धारा-सभा का पूरा अधिकार भी मान लिया गया है; परन्तु साथ ही इन अधिकारों को सीमित भी कर दिया गया है। सच बात तो यह है कि यहाँ की

---

*"A power which might be so exercised as to have far reaching effects on provincial autonomy".

नौकरशाही (Bureaucracy) और इंग्लैंड के कुछ दल इतना भी अधिकार नहीं देना चाहते थे उनकी इच्छा थी कि प्रान्त के अर्थ और शान्ति वा रक्षा-विभाग रक्षित विषय रखे जावें। परन्तु क्या इन दलों की इच्छा पूर्ति के लिये एक रूप से रक्षित विषयों की सृष्टि १९३५ के एक्ट में नहीं की गई है? ज्वाइन्ट पार्लियामेंटरी कमेटी के सामने द्विविध शासन की कठिनाइयाँ रखते हुए यू० पी० के गवर्नर सर मेलकम हेली ने कहा था—"कि द्विविध शासन में हमारी कठिनाइयाँ वास्तव में इस कारण थीं कि हम एक ही क्षेत्र पर शासन करने वाले दो हिस्सों के अधिकारी थे......और चूँकि इसी क्षेत्र को शासित करने के लिये दो विभिन्न अधिकारी वर्ग थे इस कारण द्विविध शासन में कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं।" क्या (जब हम सर सेमुएल होर का कथन स्मरण करते हैं) गवर्नर की ये जिम्मेवारियाँ शासन का पूरा क्षेत्र शासित करने के लिए नहीं हैं? या क्या प्रान्त में मंत्रियों और गवर्नर का द्विविध शासन नहीं है? क्या हस्तान्तरित और रक्षित विषयों के उत्तरदायित्व की भाँति मंत्री मंडल प्रान्तीय धारा-सभा को और गवर्नर, गवर्नर-जनरल और भारत मंत्री को उत्तरदायी नहीं है? तब प्रान्त में स्वायत्त शासन कहाँ है?

हमारा प्रान्तीय स्वायत्त शासन आशा और निराशा से भरा है। गवर्नर की कृपा-दृष्टि स्वायत्त शासन को सफल बना सकती है; परन्तु उसका भ्रू-भंग भी स्वायत्त शासन के अंत के लिए काफ़ी है। युद्ध पूर्वकाल में हमें जो आशा स्वायत्त शासन से होने लगी थी, वह युद्ध-काल में विलीन हो गई। प्रान्तों में फिर स्वायत्त शासन आने वाला है। देखें प्रान्तों का शासन अब क्या रंग लाता है? हमारे प्रान्तीय शासन का इतिहास दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) युद्ध-पूर्व-काल का शासन, (२) युद्ध-कालीन शासन। पहले में आशा पल्लवित हुई थी दूसरे ने निराशा का वरदान दिया। आशा और निराशा का यह खेल अब हम इन पृष्ठों में देखेंगे।

अल्पसंख्यक मंत्री मंडल

नया शासन विधान १९३७ की पहली अप्रेल को प्रान्तों में लागू किया गया था। उसी दिन सम्राट ने उसकी सफलता के लिए अपना यह सन्देशा भेजा था—

"आज उन शासन सम्बन्धी सुधारों का पहला भाग जिस पर दोनों भारतीयों और अँग्रेज़ों ने इतना विचार और कार्य किया है, लागू हो रहा है। मैं यह दिन अपनी भारतीय जनता को बिना यह विश्वास दिलाये नहीं जाने देना चाहता हूँ कि मेरे विचार और मेरी शुभेच्छाएँ इस अवसर पर उनके साथ हैं।" एक नया अध्याय इस प्रकार खुल रहा है और यह मेरी तीव्र आशा और प्रार्थना है कि ये अवसर जो उन्हें दिये जा रहे हैं बुद्धिमत्ता और उदारता के साथ हमारी भारतीय जनता के स्थायी लाभ के लिए काम में लाये जावेंगे।

---

*"Today the first part of those constitutional reforms upon which Indians and British alike have bestowed so much thought and

सम्राट की इन शुभेच्छाओं के साथ ही साथ उसी दिन पूरे देश में इस अनचाहे शासन विधान को तिरस्कृत करने के लिए देश-व्यापी हड़ताल की गई। दिल्ली और पटना में कुछ कांग्रेस सदस्यों की गिरफ्तारियाँ हुईं और इस हड़ताल और गिरफ्तारी के साथ देश में नया शासन विधान का जन्म हुआ। श्रीयुत मुंशी ने शासन विधान का यह स्वागत देखकर बड़ी प्रसन्नता से कहा था कि "बिना गोली चलाये हुए" जनता के विचारों के स्पर्श मात्र से ही शासन विधान का अन्त हो गया है।

१९३७ के चुनाव के द्वारा भारत के ग्यारह प्रान्तों में से छः प्रान्तों की छोटी धारा-सभा में कांग्रेस का बहुमत था। दो अन्य प्रान्तों में यही सब से बड़ी अकेली पार्टी थी जो अन्य किसी पार्टी की सहायता से सरलतापूर्वक छोटी धारा-सभा में बहुमत बना सकती थी।

कांग्रेस के फैज़पुर अधिवेशन ने १९३५ के एक्ट की बड़ी कड़ी आलोचना की थी और उसमें यह प्रस्ताव पास हो चुका था कि कांग्रेस शासन-विधान को असफल बनाने के लिये ही चुनाव में भाग लेगी। चुनाव में बहुमत पाकर क्या कांग्रेस मंत्री मंडल भी बनावेगी ? या क्या ये मंत्री मंडल शासन में रुकावट डालेंगे ? इन प्रश्नों पर फैजपुर अधिवेशन का प्रस्ताव मौन था। इस कारण प्रान्तों में बहुमत पाकर मार्च १९३७ में होनेवाली दिल्ली की बैठक में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने यह तय किया कि जिन-जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत है उन सब में कांग्रेस अपना मंत्री-मंडल बनाकर कार्य करे बशर्ते कि गवर्नर इस बात का आश्वासन दें कि वे अपने

---

work comes into operation. I cannot let the day pass without assuring my Indian subjects that my thoughts and good wishes are with them on this occassion. A new chapter is thus opening and it is my fervent hope and prayer that opportunities now available to them will be used wisely and generously for the lasting benefit of all my Indian People."

विशेषाधिकारों का उपयोग नहीं करेंगे। इस विषय पर तत्कालीन राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने विचार इन शब्दों में प्रगट किये थे—"जब तक इस प्रकार का आश्वासन प्राप्त न कर लिया जावे तब तक ज़िम्मेदारी मज़ाक होगी, क्योंकि उसमें अधिकार न होंगे। यदि ब्रिटिश सरकार के वादे सच्चे होते, तो इस प्रकार का आश्वासन अवश्य दिया जाता। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह जो कुछ उचित समझेगी वही करेगी, चाहे भारत के करोड़ों निर्वाचकों की इच्छा का उससे समर्थन होता हो या न होता हो।"—कांग्रेस मंत्री-पद ग्रहण करने के पूर्व दो आश्वासन चाहती थी :—

(१) वैधानिक कार्रवाइयों में गवर्नर मंत्री मंडल की सलाह को नामंज़ूर न करेंगे और न इस संबंध में अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करेंगे।

(२) यदि कभी इस विषय में गंभीर मतभेद हो, तो गवर्नर मंत्रीमंडल से त्यागपत्र न मांगकर उसको पदच्युत करेंगे।

परन्तु यह एक टेढ़ी खीर थी। गवर्नर के द्वारा किसी ऐसे स्पष्ट आश्वासन का दिया जाना १९३५ के एक्ट के विरुद्ध था। इस कारण जब गवर्नर द्वारा आमंत्रित होने पर छोटी धारा-सभा के कांग्रेस नेताओं ने बिना गवर्नर से आश्वासन लिए मंत्री मंडल बनाने से इनकार कर दिया, तब देश के राजनैतिक जीवन में एक बड़ी समस्या उपस्थित हो गई।

पहली अप्रेल को प्रायः सभी प्रान्तों में मंत्री मंडल बन गये। कांग्रेस प्रान्तों में भी स्थानापन्न अल्प-संख्यक मंत्री मंडल (Interim minority Ministries) बना लिये गये। ये स्थानापन्न मंत्री मंडल स्वायत्त-शासन की आत्मा, शासन-विधान के नियमों और जनता की इच्छा के विरुद्ध बनाये गये।

इसके पश्चात् कई हफ्तों और महीनों तक देश के राजनैतिक वातावरण में बड़ी गरमागर्मी रही। स्थान-स्थान पर सभाएँ हुईं, भाषण दिये गये और सरकार के कार्य की निंदा की गई। समाचार-पत्रों में लेखों, टिप्पणियों और देश के नेताओं के कथनों की भरमार हो गई।

२६ मार्च सन् १६३७ को मध्यप्रान्त के गवर्नर ने यह समस्या इस प्रकार रखी थी—"मामला सरल है; क्या कांग्रेस उन धाराओं को (गवर्नर के विशेषाधिकारी सम्बन्धी) मानती है या नहीं?" २ अप्रेल को सर सप्रू ने कहा कि "कानून की दृष्टि से मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि गवर्नर द्वारा की गई एक्ट की व्याख्या ठीक है और जब तक कि एक्ट शासन विधान से सम्बन्ध रखता है, वे किसी प्रकार का समझौता कर एक्ट से सम्बन्ध रखने वाले कर्तव्यों और जिम्मेवारियों से अलग नहीं हो सकते हैं। वे यदि कांग्रेस की इस माँग से सहमत हो गये तो यह शासन विधान की धारा होगी—वैधानिक परम्परा नहीं।"*

गांधी जी के विचार से गवर्नर का इस प्रकार का आश्वासन देना किसी भी तरह १६३५ के एक्ट के विरुद्ध नहीं जाता था और उन्होंने इंग्लैंड की सरकार के सामने यह योजना रखी कि अच्छा हो कि तीन न्यायाधीशों के सामने यह प्रश्न रखा जावे और यह देखा जावे कि क्या गवर्नर एक्ट के बिना बाहर जाये हुए भी इस प्रकार का आश्वासन दे सकता है या नहीं।

कांग्रेस के इस प्रस्ताव पर इंग्लैंड और भारत दोनों देशों में खूब विवाद चला और इसका अन्त २१ जून १६३७ को वाइसराय के रेडियो भाषण द्वारा हुआ।

जनता के साथ पूरी सहानुभूति प्रगट करते हुए वाइसराय महोदय ने व्याख्यान में कहा—"इस विधान के तीन माह के अनुभव ने यह पूर्णतया बता दिया है कि विधान को सुचारु रूप से और अबाध संचालित करने के लिए कानूनी दृष्टि से किसी ऐसे विश्वास देने की आवश्यकता नहीं है।......इस विधान के बनाने में मेरा निकट सम्बन्ध रहा है........यह एक्ट और इस

*"On the legal side, I have no doubt whatsoever that the interpretation of the Act by the Governors is right and that they could not, so long as the Act stands on the statute Book, contract themselves out of their statutory obligations and responsibilities. He would not, if he agreed to such a proposal, be establishing a convention, he would be legislating."

एक्ट के साथ ही पढ़ा जाने वाला आदेश-पत्र दोनों पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृत हैं......इन दोनों को पढ़ने से यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है और इसमें कोई शंका उठती ही नहीं कि स्वायत्त शासन के अन्तर्गत उन सभी मंत्री शासित विषयों में, जिनमें अल्पसंख्यकों और नौकरी आदि की भी बातें सम्मिलित हैं गवर्नर अपने मंत्रियों की सलाह से काम करेगा। और ये मंत्री पार्लियामेंट को उत्तरदायी न होकर प्रान्त की धारा-सभा को उत्तरदायी होंगे। यह नियम केवल कुछ बहुत थोड़े विषयों में ही लागू नहीं होता।" गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व को संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि इस सीमित क्षेत्र में गवर्नर यदि कभी मंत्रियों की सलाह नहीं मानता तो वे (यदि मंत्री चाहें) जनता को बतला सकते हैं कि इस मामले में उनकी सलाह न थी या उन्होंने इसके प्रतिकूल सलाह दी थी। वाइसराय महोदय के विचार में शासन-विधान की धाराओं का अर्थ राजनैतिक परिस्थितियों के साथ बदलता रहता है और इस बात को भूल जाना इतिहास की अवहेलना करना है। "हमारे गवर्नर भी यह चाहते हैं कि जहाँ तक हो मंत्रियों से संघर्ष न हो—वे इस संघर्ष को हटाने के लिये प्रयत्न तक करने को तैयार हैं।" त्यागपत्र और पदच्युत करने के विषय में वाइसराय ने कहा कि यदि किसी गंभीर मतभेद के विषय में, विचार विनिमय के पश्चात भी, गवर्नर और मंत्री मंडल का मतभेद दूर न हो तो मंत्री मंडल को या तो स्तीफ़ा दे देना चाहिये या गवर्नर उसे बरख़ास्त कर सकता है। त्यागपत्र देने और पदच्युत होने में प्रचलित वैधानिक प्रथा का झुकाव त्यागपत्र की ओर अधिक है। त्यागपत्र मंत्रिमंडल की प्रतिष्ठा के अधिक उपयुक्त और गवर्नर के प्रति सार्वजनिक रुख़ प्रगट करने का अधिक प्रभावशाली तरीक़ा है। त्यागपत्र मंत्रियों की इच्छा से किया हुआ कार्य है। पदच्युत करना वैधानिक प्रथा में प्रचलित नहीं है इससे एक प्रकार की छोटाई ज़ाहिर होती है जिसको हम नये विधान में कोई स्थान नहीं देना चाहते।

२६ जून १९३७ को मद्रास के गवर्नर ने भी अपने भाषण में कहा कि न तो द्विविध शासन के अन्तर्गत हस्तान्तरित विषयों के शासन में और न आज जब सभी प्रान्तीय विषय मंत्रियों के हाथ है—मेरा मंत्रियों से कभी

संघर्ष हुआ है। आगे जो भी दल शासन की बागडोर संभालेगा, उसको अपनी शक्ति भर सहायता देने की मेरी पूर्ण इच्छा है।

कांग्रेस को इन भाषणों से काफ़ी सन्तोष हो गया और यह स्पष्ट हो गया कि १९३५ के एक्ट के अन्तर्गत जो कुछ भी संभव है, भारत सरकार उसे करने को तैयार है। और चूँकि स्पष्ट शब्दों में विश्वास देना एक्ट के विरुद्ध कार्य करना है इसलिये भारत सरकार आश्वासन देने के लिये तैयार नहीं।

७ जुलाई को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी ने पद स्वीकार करने का निर्णय किया और छः प्रान्तों में कांग्रेस मंत्री मंडल बन गये। कुछ समय बाद आसाम और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में भी कांग्रेस ने मंत्री मंडल बनाना स्वीकार कर लिया।

* * *

इस काल के राजनैतिक क्षेत्र को छोड़कर जब हम शासन विधान पर दृष्टि डालते हैं तब हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि इन स्थानापन्न अल्पसंख्यक मंत्री मंडलों का शासन विधान में क्या स्थान है ?

अल्पसंख्यक मंत्री मंडल पार्लिमेंटरी सरकार में कोई अनहोनी बात नहीं है। इंग्लैंड में कई बार अल्पसंख्यक मंत्री मंडल बने हैं। तब क्या प्रान्तों के ये स्थानापन्न अल्पसंख्यक मंत्री मंडल जो अल्पसंख्यकों को इसी बीच धारा-सभा में अपनी स्थिति ठीक करने के लिए अथवा बहुमत वाले दल को विचार के लिये समय देने को कुछ काल को बनाये गये थे कानून की दृष्टि से ठीक है ?

गांधी जी ने तीन न्यायाधीशों की कमेटी के सामने इन अल्पसंख्यक कमेटी के न्यायपूर्ण अस्तित्व को भी रखने का प्रस्ताव किया था। श्री राज-गोपालाचार्य ने अपना मत प्रगट करते हुए कहा था कि इन मंत्री मंडलों की स्थापना से १९३५ का सारा एक्ट ही चिथड़े-चिथड़े उड़ जाता है। २९ अप्रेल १९३७ को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने भी यह प्रस्ताव पास किया था कि "गवर्नर द्वारा इन मंत्री मंडलों का निर्माण शासन विधान और स्वायत्त-शासन की आत्मा के प्रतिकूल है और इनकी स्थापना प्रत्येक प्रान्त के बड़े

भारी जन-समूह के विचारों के विरुद्ध की गई है। "प्रोफेसर कीथ जो शासनविधान के समर्थ आलोचक हैं, उन्होंने भी इन मंत्री मंडलों को उत्तरदायित्व सरकार के सिद्धान्तों के प्रतिकूल बताया था। उनके विचार से ब्रिटिश सरकार का यह कार्य शासन विधान की असफलता को छिपाने का प्रयत्न बताता है।

तब क्या ये मंत्री मंडल १६३५ के एक्ट के विरुद्ध बने थे? गवर्नर या इंग्लैंड की सरकार को ऐसा करने का कुछ भी हक़ न था। मंत्री मंडल के बनाने के विषय में १६३५ का एक्ट मौन है। इस विषय में गवर्नर को दिया हुआ आदेश-पत्र की आठवीं धारा पर ही हमें विचार करना होगा। आठवीं धारा इस प्रकार है :—

"गवर्नर मंत्रियों को निम्नलिखित रीति से चुनने का पूर्ण प्रयत्न करेगा... ...वह उस व्यक्ति की सलाह से जो इसके विचार में धारा-सभा में स्थायी बहुमत रख सकता है, उन व्यक्तियों को (मुख्य अल्पसंख्यक सदस्यों का ध्यान रखते हुए) अपना मंत्री बनावेगा, जो सामूहिक रूप से धारा-सभा के विश्वास-पात्र होने के योग्य होंगे।" इस धारा के अनुसार गवर्नर का आचरण सचमुच में ठीक नहीं मालूम होता; परन्तु १६३५ के एक्ट की ५३ (२) धारा भी यह स्पष्ट बतलाती है कि आदेश-पत्र में दिये गए आदेशों के विरुद्ध यदि गवर्नर कोई कार्य करता है तो उस कार्य की न्याय-परता पर कोई भी प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। इससे यह अच्छी तरह मालूम हो सकता है कि नियम की दृष्टि से आदेश-पत्र की उपेक्षा करते हुए इन मंत्री-मंडलों की स्थापना कर गवर्नर ने कोई नियम विरुद्ध कार्य नहीं किया है।

ब्रटिश गवर्नमेंट गवर्नर की इस कार्यवाही को पूर्णतया नियमानुसार समझती रही है। मद्रास के गवर्नर लार्ड इर्सकाइन ने गवर्नरों के इस कार्य का समर्थन किया है। उनके विचार में "गवर्नरों ने एक्ट के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं किया है। इस कार्य से गवर्नरों को अपने प्रान्त में ऐसे मंत्री मंडल बनाने का समय मिल सकेगा जो प्रान्तीय धारा-सभा की विश्वास-पात्र होगी।" लार्ड इर्सकाइन के इस कथन से और 'स्थानापन्न मंत्रि-

मंडल' नामकरण से भी इन मंत्रि-मंडलों के विषय में कुछ अड़चन मालूम होती है। "स्थानापन्न मंत्री मंडल" के नाम से ही मालूम होता है कि ये मंत्री-मंडल केवल कुछ काल के लिए ही थे। उस समय तक ही इनको काम करना था जब तक कि या तो बहुमत दल अपना विचार मंत्री मंडल बनाने का न कर ले या अल्पसंख्यक दल अपनी स्थिति धारा-सभा में मज़बूत न बना ले। इस प्रकार के मंत्री मंडल किसी भी शासन-विधान में देखने को नहीं मिलते। गुलाम देश का शासन-विधान ही क्या—यदि उसमें कुछ अनहोनी बातें न दिखाई दें। ये मंत्री मंडल १९३५ के एक्ट की किसी भी धारा के विरुद्ध तो अवश्य ही नहीं बने परन्तु इनका निर्माण सारी वैधानिक परम्पराओं, स्वायत्तशासन की आत्मा और प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्तों के विरुद्ध अवश्य हुआ है।

यदि यह सोच लिया जावे कि गवर्नर इन मंत्री-मंडल को न बनाते तब क्या होता? वही जो कांग्रेस के स्तीफ़ा देने पर हुआ। एक्ट की ९३ धारा लगाकर कि प्रान्त में शासन-विधान असफल हो रहा है, गवर्नर सारा शासन अपने हाथ में ले लेता। परन्तु इसमें इंग्लैंड की सरकार की हार होती और कांग्रेस का विजय। क्योंकि कांग्रेस तो एक्ट को असफल बनाने के लिए ही चुनाव लड़ी थी। परन्तु इंग्लैंड की सरकार को छः माह तक अपनी विजय रखने का मौक़ा था; क्योंकि धारा ६२ (३) के अनुसार उन्हें छः माह तक धारा-सभा के नए अधिवेशन को बुलाने का समय मिल जाता था और इस काल में वे अपने अल्पसंख्यक मंत्री मंडल को धारा-सभा के अविश्वास के प्रस्ताव से बचा सकते थे। अस्तु भारत सरकार के इस कार्य से वह परिस्थिति आने से रुक गई जो दो वर्ष बाद आने वाली थी।

आशा

कांग्रेस की यह पहली जीत थी। इन तीन माह की सरगर्मी ने यह अच्छी तरह विश्वास दिला दिया था कि गवर्नर साधारणतया प्रान्त के शासन में बाधा न डालेंगे। यह विश्वास कांग्रेस शासन काल में ठीक भी निकला। इसमें सन्देह नहीं कि अल्पसंख्यक मंत्री मंडलों को भी गवर्नरों ने काम करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी और कई प्रान्तों के अल्पसंख्यक मंत्रियों ने इस बात का समर्थन भी किया था कि उनके काम में गवर्नर ने कभी बाधा नहीं डाली; परन्तु राजगोपालाचार्य ने जो मीठी चुटकी इन कथनों पर ली थी, उसकी सत्यता पर भी अविश्वास नहीं किया जा सकता। "सारे भारत के स्थानापन्न मंत्री-मंडल उस स्वतन्त्रता का बड़ा शोर मचा रहे हैं, जो उन्हें प्रान्तों का शासन करने में गवर्नर के द्वारा मिली है। ६५ दिन के इस सरकस ने उन्हें यह अच्छी तरह बता दिया है कि सिंहों के मुँह में सिर देने पर भी सिंह उन्हें काटते नहीं। परन्तु जो बात सरकस के सिंहों और सरकस के असिस्टेंटों के बारे में सत्य है वह गवर्नर और कांग्रेस के बीच सत्य नहीं।"

७ माह के शासन के पश्चात् यू० पी० और बिहार में राजनैतिक कैदी छोड़े जाने के प्रश्न पर फिर एक बड़ा तूफ़ान खड़ा हो गया। अन्दमान के कुछ राजनैतिक कैदियों ने जेल से छुटकारा पाने के लिए भूख हड़ताल कर दी थी। उत्तरदायी मंत्री उन्हें देश में बुलाना चाहते थे और फिर छोड़ देना चाहते थे। भारत-सरकार इन कैदियों को तो देश में लाने को तैयार थी परन्तु उन्हें छोड़ने के विषय में उसने साफ़ नाहीं कर दी।

इस समय देश के कई भागों में राजनैतिक कैदी जेल की चहारदीवारी के भीतर सड़ रहे थे। इन कैदियों की कुल संख्या इस समय ३८७ थी, जिसमें ३०० बंगाल में थे, २३ बिहार में, १४ संयुक्त प्रान्त में, ६ मद्रास में, ३ बंबई में और बाक़ी पंजाब और आसाम में। कांग्रेस ने अपने चुनाव के समय राजनैतिक कैदियों को छुड़ाने का भी वायदा किया था, इस कारण फरवरी, १९३८ में जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक वर्धा में हो रही थी, उस समय उसके सामने इन कैदियों की बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो गई। ढाका, हज़ारीबाग़ और पंजाब के कुछ जेलों में जेल से छुटकारा पाने के लिये इन कैदियों ने भूख-हड़ताल प्रारम्भ कर दी। जब ढाका जेल के एक कैदी ने भूख-हड़ताल में अपने जीवन को समाप्त कर दिया, तब तो समस्या और भी गंभीर हो गई। कांग्रेस ने ऊपर से तो इस भूख-हड़ताल की बड़ी निंदा की और जनता को यह आश्वासन दिया कि वह इन कैदियों को शीघ्र ही छुड़ाने का प्रयत्न करेगी, परन्तु गुप्तरूप से उसने कांग्रेस मंत्रियों को आदेश दिया कि वे इन कैदियों को शीघ्र ही छुड़ावें। आवश्यकता पड़ने पर वे इस प्रश्न पर त्यागपत्र देने की धमकी तक गवर्नर को दें।

जनता को इन आदेशों का पता ही नहीं था, इस कारण १६ फ़रवरी की इस ख़बर ने कि राजनैतिक कैदियों के प्रश्न पर यू० पी० और बिहार के मंत्री-मंडलों ने स्तीफ़ा दे दिया है, सारी जनता में एक सनसनी फैला दी। गवर्नमेंट की विज्ञप्ति ने सारी परिस्थिति जनता के सामने रख दी। उसमें कहा गया था कि राजनैतिक कैदियों के छोड़ने के मामले में गवर्नर द्वारा रखी गई कुछ शर्तों को जब मंत्रियों ने नामंजूर कर दिया और मंत्री गवर्नर की दी हुई

सलाह में कुछ भी परिवर्तन करने को तैयार नहीं हुए तो गवर्नर ने इस मामले को गवर्नर जनरल की सलाह के लिए पेश किया। गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की १२६ (५) धारा के अनुसार गवर्नर जनरल ने प्रान्तीय गवर्नर को जो आदेश दिए, उनके अनुसार बिहार और यू० पी० के गवर्नर मंत्रियों की दी हुई सलाह को मानने में असमर्थ थे जिसके कारण इन प्रान्तों के मंत्रियों ने अपना त्यागपत्र दे दिया है।

कांग्रेस का दृष्टिकोण गवर्नर को भेजे हुए श्री गोविन्द वल्लभ पंत के पत्र से स्पष्ट हो जाता है।

"जैसा कि आपने मुझे और मेरे साथियों को सूचित किया है कि गवर्मेंट आफ़ इण्डिया एक्ट की १२६ (५) धारा के अन्तर्गत गवर्नर जनरल द्वारा दिये गए आदेश के कारण आप हमारी उस सलाह को मानने को तैयार नहीं हैं, जिसे हमने राजनैतिक क़ैदियों को छोड़ने के सम्बन्ध में देना अपना कर्तव्य समझा था, हमारे सामने सिवा त्याग-पत्र देने के और कोई चारा नहीं है। इस कारण हम अपना त्यागपत्र दे रहे हैं। शासन और विधान दोनों की दृष्टि से यह नई समस्या बड़ी महत्वपूर्ण है।

"राजनैतिक कैदियों को छुड़ाना कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य रहा है। यह बात कांग्रेस के निर्वाचन-पत्र में भी स्पष्ट रूप से बतला दी गई थी; और निर्वाचकों ने कांग्रेस का अच्छी तादाद में साथ दिया था। ब्रिटिश सरकार इस प्रकार कांग्रेस की नीति और उसके फल से भली भाँति परिचित रही होगी। यह कभी नहीं सोचा जा सकता है कि गवर्नर जनरल ने यह न समझ लिया होगा कि कांग्रेस जब भी पद ग्रहण करेगी, तब भी वह अपने वचन को पूरा करने का प्रयत्न करेगी और अपने उद्देश्य की पूर्ति करेगी। इन सब बातों की पूर्ण जानकारी होते हुए भी कांग्रेस को पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया गया था। इस प्रकार का विश्वास भी निश्चय था कि कांग्रेस अपना कार्यक्रम पूरा करने में पूर्ण स्वतन्त्र रहेगी।

"गवर्नर जनरल ने जिन कारणों से यह तय किया है, वे भी हमें ज्ञात नहीं हैं और हमारी विनय करने पर भी आपने उन्हें हमें बताने में

अपनी असमर्थता प्रगट की है। प्रान्त में शांति और व्यवस्था रखने का उत्तर-दायित्व मंत्रियों पर है। कोई भी मंत्रिमंडल अपने कर्तव्य सन्तोषजनक रूप से नहीं कर सकता है—यदि उसके शासनाधीन महत्वपूर्ण विषयों पर उसका विचारपूर्ण निर्णय एक बाहरी शक्ति द्वारा स्वेच्छा से ठुकरा दिया जाता है और जब उसे उन कारणों को सूचित करने का शिष्टाचार भी नहीं रखा जाता है, जिनके सबब से यह हस्तक्षेप किया गया है।

"यह बात समझ में ही नहीं आती कि अधिक से अधिक १५ राजनैतिक क़ैदियों के छोड़े जाने से प्रान्त की शान्ति और व्यवस्था में किस प्रकार भारी ख़तरा पैदा हो सकता है ......।

"गवर्नर जनरल का यह निर्णय अन्तर्प्रान्तीय मामलों से सम्बन्ध रखता है और यह भी मार्के की बात है कि यह कार्य धारा ५४ के अन्तर्गत न किया जाकर धारा १२६ के अन्तर्गत किया गया है, जिससे मालूम होता है कि प्रान्त के गवर्नर के विचार से प्रान्त की शान्ति और व्यवस्था को इस कार्य से कोई भी ख़तरा नहीं है . ...।

"प्रान्त के साधारण शासन में गवर्नर जनरल द्वारा यह हस्तक्षेप विधान-सम्बन्धी बड़े महत्व के प्रश्न उत्पन्न करता है और प्रान्त में शान्ति और व्यवस्था रखने का यह प्रयत्न इस प्रान्त की ही नहीं, सारे भारतवर्ष की शान्ति और व्यवस्था को ख़तरे में डाल सकती है।..... हम इस हस्तक्षेप को धारा १२६ (५) का कुप्रयोग ही समझते हैं और यह घटना हमें अच्छी तरह बतला देती है कि जिस प्रान्तीय स्वायत्त शासन का सुख हम लूटने की आशा करते हैं वह स्वायत्त शासन कितना खोखला है।"

हरिपुरा कांग्रेस का अधिवेशन प्रारंभ होनेवाला था। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधि इकट्ठे हो रहे थे। प्रश्न यह था कि यह वैधानिक समस्या उन्हीं प्रान्तों तक सीमित रहे या इसे देश का प्रश्न बनाकर अन्य कांग्रेस प्रान्तों में भी त्यागपत्र दिया जावे।

इसी बीच संयुक्त प्रान्त और बिहार में गवर्नर अल्पसंख्यक दलों से मंत्री-मंडल बनाने के लिए बातचीत कर रहे थे।

कांग्रेस अधिवेशन ने बिहार और यू० पी० के मंत्री मंडलों के कार्य का पूरा समर्थन किया। इस अवसर पर पटेल के शब्द स्मरणीय हैं। "पद ग्रहण करने में कांग्रेस का उद्देश्य मंत्रियों के आसनों की शोभा बढ़ाना न थी और न पद के मीठे फल का स्वाद ही लेना था। यह भार केवल स्वतन्त्रता के युद्ध में सहायता देने और जन-समुदाय को दृढ़ बनाने के लिए लिया गया था। जब से कांग्रेस ने पद ग्रहण किया है, तभी से वह सोचती रही है कि राजनैतिक कैदियों को छोड़ना उसका मुख्य कर्तव्य है..... यदि हम १५ कैदियों को नहीं छोड़ सकते तो यह प्रान्तीय स्वायत्त शासन हमारे किस काम का? बिहार और यू० पी० में गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप ने प्रान्तीय स्वायत्त शासन का नंगा तमाशा हमारे सामने खड़ा कर दिया है। (इसके पहले कि यह रोग अन्य प्रान्तों में बढ़े) हम गवर्नर जनरल को अपनी भूल सुधारने का एक और मौका देते हैं।"

२२ फ़रवरी १६३८ को वाइसराय का कथन प्रकाशित हुआ, जिसका सारांश था कि पिछले दिनों शांति व्यवस्था भंग करने वाले अपराधियों ने पूरे बङ्गाल में बड़ा उपद्रव मचा रखा था जिसका ध्यान रखकर मेरे लिये आवश्यक था कि मैं प्रत्येक व्यक्ति के अपराध को देखकर ही कोई कार्य करता। सामूहिक रूप से सभी अपराधियों को छोड़ देना देश की शांति और व्यवस्था के लिए उचित नहीं प्रतीत होता। इस कारण ही मैंने धारा १२६ (५) के अनुसार गवर्नर को मंत्रियों की सलाह न मानने का आदेश दिया था।

"मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि मेरा उद्देश्य किसी भी तरह प्रान्त के कांग्रेस मंत्री मंडल की परिस्थिति नाज़ुक बनाना नहीं था और न मेरी कोई ऐसी इच्छा ही थी। न तो गवर्नर और न गवर्नर जनरल की ही इच्छा प्रान्त के दैनिक शासन में बाधाएँ डालने की है। राजनैतिक कैदियों को जेल से छोड़ने की जो कार्यवाही अभी हुई है, उस पर मंत्री लोग अभी भी गवर्नर की सलाह से कैदियों को छोड़ने का कार्यक्रम रख सकते हैं। उन्हें भविष्य में किसी प्रकार की बाधा की आशंका न करना चाहिए और जैसा पिछले दिनों में उन्हें गवर्नर का मित्रवत् सहयोग प्राप्त होता रहा है उसी प्रकार का

सहयोग वे अब भी प्रत्येक अपराधी की परिस्थिति जानने और उस पर कार्य करने में गवर्नर से प्राप्त कर सकते हैं। हर्ष की बात है कि इन दो प्रान्तों का रोग अन्य प्रान्तों में बढ़ने से रोका गया है। मुझे आशा है कि आगे का शासन फिर अच्छी तरह से चलने लगेगा और इन दो प्रान्त के मंत्री लोग फिर अपना कार्यक्रम चालू रखेंगे।"

हरिपुरा अधिवेशन से लौटने पर मंत्री फिर आमंत्रित किये गए और फ़रवरी १६३८ का सारा तूफान समाप्त हो गया। गवर्नरों और प्रधान मंत्रियों द्वारा प्रकाशित सम्मिलित कथन से मालूम होता है कि इस पूरी घटना में कांग्रेस की ही विजय रही। पटना के सर्चलाइट पत्रिका ने इस घटना को बड़ा महत्वपूर्ण बताया था। उसकी दृष्टि से इस घटना द्वारा "प्रान्तों में पूर्णतः मंत्री मंडल के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त स्थापित हो जाता है।"

शासन-विधान की दृष्टि से इस पूरी घटना में एक महत्वपूर्ण बात है। क्या धारा १२६ (५) के अनुसार गवर्नर जनरल का प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करना उचित था? धारा ५२ गवर्नर को प्रान्त की शान्ति और व्यवस्था के लिये उत्तरदायी बनाती है और धारा १२६ गवर्नर जनरल को पूरे देश की शान्ति व्यवस्था के लिए उत्तरदायी बनाती है। यदि उसके विचार से एक प्रान्त की कार्यवाही दूसरे प्रान्त पर अनुचित प्रभाव डाल सकती है तो गवर्नर जनरल इस धारा के अन्तर्गत प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है। जेल से राजनैतिक कैदियों को छोड़ने के प्रश्न पर गवर्नर मौन था, जिससे मालूम होता है कि गवर्नर जनरल ने दूसरे प्रान्तों में इसका कुप्रभाव देखकर ही प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप किया था। ये दूसरे प्रान्त पंजाब और बंगाल ही हो सकते हैं, जहाँ पर सब से अधिक राजनैतिक कैदी थे। कहा नहीं जा सकता कि गवर्नर जनरल को इस प्रकार कार्य करने के लिए सर सिकन्दर हयात ख़ाँ या फ़ज़लुलहक़ ने कहाँ तक प्रेरित किया हो। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गवर्नर जनरल ने यह कार्यवाही बंगाल और पंजाब का ध्यान रखकर ही की थी। उस समय यह बात समझ में नहीं आती, कि किस प्रकार विहार और यू० पी० के थोड़े से राजनैतिक कैदी बंगाल

और पंजाब की शांति और व्यवस्था भंग कर सकते थे और यदि ऐसी बात न थी तो गवर्नर जनरल का इन दो प्रान्तों में हस्तक्षेप अनुचित था।

गवर्नर जनरल और गवर्नरों तथा बाद में प्रधान मंत्री और गवर्नरों की सम्मिलित विज्ञप्ति से यही पता चलता है कि प्रश्न उतना राजनैतिक कैदियों के छोड़े जाने का नहीं था जितना कि सभी कैदी एकदम न छोड़े जावें। और इसीलिए व्यक्तिगत अपराध की पूरी जाँच करने पर अधिक ज़ोर दिया गया था। सम्मिलित विज्ञप्ति से यही पता चलता है कि राजनैतिक कैदियों के छोड़ते समय प्रत्येक कैदी के अपराध की जाँच हुई थी। अब प्रश्न यह है कि यह जाँच किसने की और वास्तव में किसने इनके छोड़ने की आज्ञा दी। सम्मिलित विज्ञप्ति से भी यह साफ़-साफ़ मालूम होता है कि यह मुख्य कार्य मंत्रियों द्वारा ही हुआ है। तब तो वास्तव में यह कांग्रेस की विजय थी।

इस घटना ने प्रान्तीय स्वायत्त शासन की नींव प्रान्तों में दृढ़ कर दी और यह मालूम होने लगा कि राजनैतिक परम्पराओं द्वारा प्रान्तों में विधान के शब्दों से परे उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जावेगी। कांग्रेस की पिछली कार्य प्रणाली से ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर भारी धक्का लगा और ब्रिटिश गवर्नमेंट कुछ दिनों के लिए शान्त हो गई। परन्तु डेढ़ साल के पश्चात् ही राजनैतिक वातावरण में फिर सरगर्मी शुरू हुई और गवर्नर ने फिर उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्तों के प्रतिकूल मध्यप्रान्त में डा० खरे को सहायता देने में काम किया। परन्तु ये डेढ़ वर्ष प्रान्तों में पूर्ण स्वायत्त शासन के दिन थे। मंत्रिमंडल अपनी नीति और कार्यक्रम पालने में पूरा स्वतन्त्र था, जिसके फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जनता के लाभ के लिए कई कार्य हुए।

* * *

जुलाई १९३८ में मध्यप्रान्त के कांग्रेस मंत्री मंडल में कुछ गड़बड़ी मची। प्रधान मंत्री डा० खरे और महाकौशल के तीन मंत्रियों में कुछ रंजिश चली आ रही थी और प्रधान मंत्री उन्हें अपने मंत्री मंडल से हटाना चाह रहे थे। कांग्रेस हाई कमांड को डा० खरे ने पहले यह विश्वास दे रखा था कि बिना उनकी सलाह के डा० खरे इन मंत्रियों को हटाने का कोई भी काम

नहीं करेंगे। डा० खरे ने गवर्नर की सहायता से इन मंत्रियों को हटाने का षड्यन्त्र रचा और १३ जुलाई को अपने दो मित्र मंत्रियों से स्तीफा ले लिया। १८ जुलाई को डा० खरे ने इन तीन मंत्रियों को लिखा कि यदि प्रधान मंत्री अपना त्याग पत्र दें तो क्या मंत्री मंडल की परम्परा के नाते ये भी अपना त्यागपत्र देंगे? महाकौशल के मंत्रियों ने डा० खरे की इस चाल का विरोध किया और उन्होंने श्री खरे को उस वचन का स्मरण दिलाया जो उन्होंने कांग्रेस संस्था की आज्ञापालन के विषय में दिया था। मंत्रियों ने लिखा कि एक जनरल अनुशासन के नाम पर हमें यन्त्र के समान चला सकता है; परन्तु एक विद्रोही को हम से इस प्रकार के आचरण की आशा करने की धृष्टता न करना चाहिये।

२० जुलाई को डा० खरे और उनके दो मित्र मंत्रियों ने गवर्नर को अपने त्यागपत्र दे दिये। महाकौशल के तीन मंत्रियों ने गवर्नर से कहा कि वे बिना कांग्रेस हाई कमांड की आज्ञा के स्तीफा नहीं दे सकते। २१ ता० को ५ बजे सवेरे गवर्नर ने इन तीन मंत्रियों को बरख्वास्त कर दिया और उसी दिन डा० खरे का नया मंत्री मंडल बन गया। मंत्री मंडलों के इतिहास में इस मंत्री मंडल का सब से कम जीवन रहा क्योंकि २२ ता० को डा० खरे ने फिर त्यागपत्र दे दिया।

कांग्रेस के हाई कमांड ने डा० खरे को दोषी ठहराया और डा० खरे को पद-त्याग करने के लिये तथा प्रान्तीय धारा सभा से भी हटने का आदेश दिया। तीन महाकौशल मंत्रियों में पं० रविशंकर शुक्ल कांग्रेस पार्टी के प्रधान हुए और २९ ता० को उन्होंने अपना मंत्री मंडल बनाया।

इस घटना में गवर्नर का कितना हाथ था यह कहना बड़ा कठिन है। कुछ लोगों के विचार से गवर्नर का महाकौशल के मंत्रियों को पद-च्युत करना और डा० खरे के साथ षड्यन्त्र करना वैधानिक रूप से ठीक नहीं है। एक मंत्री मंडल को बड़े सवेरे विदा कर उसी प्रधान मंत्री की सलाह से जिसने अपने मंत्रियों की पीठ पीछे गवर्नर से षड्यन्त्र रचा हो दूसरा मंत्री मंडल बनाना उनकी दृष्टि से असह्य है। अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए

वे इंग्लैंड में हुई इसी प्रकार की घटना का भी उल्लेख करते हैं। १६३१ में इंग्लैंड में मि० रेमजे मेकडानल्ड के प्रधान मंत्रित्व में मज़दूर दल का मंत्री मंडल था। अपने साथियों को बिना बताये हुए प्रधान मंत्री ने सम्राट पंचम जार्ज से मज़दूर दल के मंत्री मंडल का स्तीफा देकर अपने ही प्रधान मंत्रित्व में एक दूसरे सर्वदल मंत्री मंडल बनाने की योजना की जिसमें अधिकांश अनुदार दल के मन्त्री थे। वैधानिक आचार्य प्रोफेसर हेरोल्ड जे० लास्की सम्राट के इस कार्य से सहमत नहीं हैं। उनके विचार से सम्राट ने अपने परम्परा-गत पथ को छोड़कर प्रधान मंत्री के अन्य साथियों के खिलाफ़ प्रधान मंत्री से षडयन्त्र किया है जिसका तात्पर्य यह होता है कि सम्राट ने अपने ही मंत्रि-मंडल के विरुद्ध यह कार्यवाही की है। हमें यह न भूलना चाहिये कि सम्राट के सामने और कोई चारा न था। हाउस आफ़ कामन्स का बहुमत मि० रेमजे मेकडानल्ड को अपना प्रधान मंत्री मानने को तैयार था। ऐसी परि-स्थिति में सम्राट प्रधान मंत्री की योजना के विरुद्ध न जा सकते थे। उनकी असम्मति ही वैधानिक परम्परा के विरुद्ध होती। और इस तरह से प्रोफेसर लास्की के इस कथन में कि सम्राट ने परम्परा को छोड़ दिया है कोई सत्य नहीं है।

डा० खरे से सम्बन्धित घटना भी कुछ इसी प्रकार की है। उन्होंने भी रेमज़े मेकडोनल्ड के समान ही आचरण किया था। अन्तर केवल इतना ही था—(और जैसा कि बाद में मालूम हुआ) कि प्रान्तीय धारा सभा का कांग्रेस दल उन्हें अपना प्रधान मानने को तैयार न था। परन्तु इस कार्य में डा० खरे की भूल मालूम होती है गवर्नर की नहीं। डा० खरे ने जो मंत्री-मंडल बनाया था उसके सदस्य भी कांग्रेस दल के थे—इस हालत में प्रधान मंत्री ने नया मंत्री मंडल न बनाकर एक रूप से अपने मंत्री मंडल में ही परिवर्तन किया था। प्रधान मंत्री को इस कार्य में पूर्ण स्वतंत्रता है और यदि गवर्नर प्रधान मंत्री की इस स्वतन्त्रता में बाधा देता तो अवश्य ही गवर्नर उत्तरदायी शासन की परम्परा के विरुद्ध कार्य करता। केवल यह सोचकर कि शायद कांग्रेस दल डा० खरे को अपना प्रधान आगे चलकर न मानेगी

प्रधान मंत्री की इच्छा के प्रतिकूल काम करने से उसके ऊपर दलबन्दी का दोषारोपण हो सकता था। उस समय परिस्थिति और भी गंभीर हो जाती। सभी लोग यह सोचते कि गवर्नर ने अपने प्रधान मंत्री वा मंत्री-मंडल के विरुद्ध प्रान्त के एक दल से समझौता कर लिया है। तीसरे यदि मान लिया जावे कि गवर्नर डा० खरे की इस योजना को ठुकरा देता तब भी डा० खरे के पद-त्याग करने पर सारे मंत्री मंडल का जीवन आप से आप ही समाप्त हो जाता और यदि इस हालत में कोई मंत्री अपना पद-त्याग नहीं करता तो गवर्नर को सिवा उसे पद-च्युत करने के और कोई कार्य नहीं रह जाता। बिना एक मंत्री मंडल को हटाये वह दूसरे मंत्री मंडल बनाने का आदेश कैसे दे सकता था? डा० खरे को उस समय भी आशा थी और गवर्नर महोदय भी शायद यही समझते होंगे कि प्रान्तीय धारा सभा डा० खरे का साथ देगी। ऐसी हालत में धारा सभा के प्रधान की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने में गवर्नर की परिस्थिति अधिक नाजुक हो जाती और वह अधिक दोषी ठहराया जा सकता था।

डा० खरे की यह घटना तो प्रान्तीय स्वायत्त शासन की विजय ही बताती है। जहाँ गवर्नर ने अपना कार्य एक नाममात्री शासक की भाँति, प्रधान मंत्री के कहने पर, उत्तरदायी सरकार की परम्परा का ध्यान रखकर, किया है। प्रान्तीय स्वायत्त शासन की यह दूसरी विजय थी।

* * *

धीरे-धीरे उत्तरदायित्व सरकार की नींव जमती जा रही थी। गवर्नर और मंत्रियों में इस काल कोई भी मतभेद नहीं हुआ और न कोई वैधानिक संकट ही उत्पन्न हुआ। उड़ीसा में इस प्रकार की कुछ आशंका थी परन्तु भारत सरकार ने उस परिस्थिति के आने का मौका ही नहीं दिया। उड़ीसा के गवर्नर ने कुछ दिनों की छुट्टी लेने का विचार किया और भारत सरकार ने मि० डेन्स को जो उड़ीसा में कमिश्नर थे उस काल के लिए गवर्नर के पद पर नियुक्त करना सोचा। उड़ीसा के मंत्री मंडल ने इसका तीव्र विरोध

किया। एक कमिश्नर जो पहले उनकी आज्ञा पालन करता था—जो उनके आधीनस्थ था क्या वही व्यक्ति अब गवर्नर बनकर उनको आज्ञा देगा और समय पड़ने पर उनकी दी हुई सलाह को ठुकरावेगा? इस परिस्थिति को बचाने के लिए गवर्नर ने छुट्टी लेने का इरादा ही बदल दिया। और उड़ीसा में इस प्रकार गंभीर परिस्थिति आने से रुक गई।

*   *   *

इस काल के शासन को देखने से मालूम होता है कि गवर्नर और उनके मंत्री मंडलों में कभी भी कोई बात नहीं खटकी और उनके सम्बन्ध बहुत ही अच्छे रहे। महात्मा गांधी तक ने इस बात में गवर्नरों की तारीफ़ की थी। यह बात केवल कांग्रेस प्रान्तों के लिये ही सत्य नहीं थी। अन्य प्रान्तों में भी ऐसी कोई परिस्थिति नहीं आई जिसके कारण गवर्नरों को अपने विशेषाधिकार का उपयोग करना पड़ता।

संभव है अप्रेल १९३७ से जुलाई १९३७ तक जो कांग्रेस और भारत-सरकार में तनातनी चलती रही थी उसी का यह परिणाम हो और गवर्नरों ने व्यर्थ ही प्रान्त के शासन में हस्तक्षेप कर बखेड़ा उठाना पसंद न किया हो। परन्तु यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इस समय कांग्रेस की नीति भी यही थी कि कोई ऐसी बात न उठाई जावे जिसमें गवर्नर और मंत्री मंडलों का संघर्ष अनिवार्य हो जाय। कांग्रेस के जिम्मेवार लोग भले ही इस दूसरे कथन से सहमत न हों। वे भले ही यह कहते रहें कि कांग्रेस बखेड़ा तो उठाना न चाहती थी; परन्तु बखेड़ों से घबड़ाती न थी, इस कारण उसने जहाँ झगड़ा मोल लेने का प्रयत्न नहीं किया वहाँ झगड़ा बचाने के लिए भी उसने अपनी नीति को एक किनारे नहीं रखा। परन्तु हमें इन दो वर्षों के शासन में जो कुछ उदाहरण मिलते हैं उनसे तो यही पता चलता है कि कांग्रेस मंत्री मंडलों ने भी काफी प्रयत्न किया था कि व्यर्थ झगड़ा न हो और जनता के लाभ के लिए जितना अधिक कार्य हो सके उतना अधिक कार्य किया जावे। शासन में बाधाएँ डालकर उसे नष्ट करने की नीति एक किनारे रख दी गई थी और मालूम तो यही होता है कि

कांग्रेस ने १९३५ के एक्ट में दी गई अधिक से अधिक सुविधाओं का उपयोग कर जनता के लाभ के लिए ठोस काम करने का ही उद्देश्य अपने सामने रखा था।

कांग्रेस ने चुनाव के अवसर पर यह घोषित किया था कि अधिकार मिलने पर वह सरकारी इमारतों पर से "यूनियन जेक" को उखाड़ फेंकेगी और उसके बदले में तिरंगा झंडा फहरावेगी। परन्तु जब अगस्त १९३७ में बिहार की प्रान्तीय धारा-सभा में कांग्रेस सदस्य द्वारा उपस्थित किया हुआ इस आशय का प्रस्ताव गवर्नर के द्वारा नामंजूर कर दिया गया तो कांग्रेस मंत्रि मंडल ने इस नामंजूरी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। क्या कांग्रेस का यह संघर्ष बचाने का प्रयत्न नहीं था ?

इसी प्रकार पुलिस और सरकारी नौकरों को कांग्रेस से बचाने के लिए प्रायः सभी गवर्नरों ने भरसक प्रयत्न किये हैं और कहीं-कहीं तो यह मालूम होता था कि गवर्नर और मंत्री मंडलों में सरकारी नौकरों पर अपना अधिकार रखने की होड़ लगी हुई थी। जैसा आगे चलकर हम लिखेंगे—१९४२ में यही होड़ बंगाल में हक़ मंत्री मंडल के पतन का कारण बनी।

अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा करने के नाम पर भी गवर्नर प्रान्त में हस्तक्षेप कर सकता था। कई प्रान्तों में, विशेषकर यू० पी०, बिहार, मध्य-प्रान्त में मुसलमानों ने, बंबई में शराब रोकी पर पारसियों ने, और सम्पत्ति कर पर मुसलमानों ने तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में हिन्दुओं ने मंत्री-मंडलों के विरुद्ध गवर्नरों की शरण ली है; परन्तु इन सभी अवसरों पर गवर्नरों ने अपने विशेषाधिकारों का उपयोग न कर मंत्री मंडलों के पास ही ये शिकायतें भेज दी हैं।

कहीं-कहीं तो गवर्नरों को मंत्रियों की इच्छा पूरी करने के लिए बाध्य भी होना पड़ा है। गवर्नर अपने निजी अधिकार में एडवोकेट जनरल की नियुक्ति करता है। कांग्रेस की पद स्वीकृति के पश्चात् कई प्रान्तों के कांग्रेस मंत्रि-मंडलों की इच्छा थी कि एडवोकेट जनरल उन्हीं की दृष्टिकोण वाला हो वा उनका विश्वास-पात्र हो। परन्तु इन एडवोकेट जनरलों की नियुक्ति पहले ही

हो गई थी इस कारण गवर्नरों के सामने बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई। बंबई और बिहार में तो किसी बहाने एडवोकेट जनरल का स्तीफा स्वीकार कर लिया गया और नये एडवोकेट जनरल बनाये गये परन्तु मध्यप्रान्त में पुराना एडवोकेट जनरल ही काम करता रहा, जिसका फल यह हुआ कि एडवोकेट जनरल को न तो धारा सभा की बैठकों में उपस्थित होने को कहा गया और न कांग्रेस मंत्रियों ने ही उनकी कभी सलाह ली।

कांग्रेस के इस शासन-काल में कई महत्वपूर्ण कार्य हुए। कांग्रेस ने जनता के सम्मुख रखे गये निर्वाचन पत्र की कई शर्तों को पूरी तौर से निबाहा। राजनैतिक कैदियों के छुड़ाने में उत्तरदायी मंत्रियों की विजय की चर्चा हम कर ही चुके हैं। कांग्रेस का दूसरा वायदा था कि वह असहयोग आन्दोलन के समय जब्त की गई ज़मीन को फिर वापस दिलायेगी। इधर सरकार ने इन ज़मीन मोल लेने वालों को यह विश्वास दिलाया था कि उनकी ली हुई भूमि कभी वापस न कराई जावेगी। बंबई प्रान्त में कांग्रेस के सामने यह टेढ़ा प्रश्न था और कुछ समय तक तो यही मालूम होता था कि इस संघर्ष का कोई नतीजा न होगा। कांग्रेस मंत्री मंडल ने धारा-सभा में इस आशय का प्रस्ताव पास किया। गवर्नर की मंजूरी में सन्देह था; परन्तु इधर मंत्री मंडल भी अपनी नीति पर दृढ़ था। अन्त में गवर्नर ने प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिये और कांग्रेस अपने चुनाव के वचन को पूरा कर सकी।

परन्तु इस बात से यह आशा करना कि गवर्नर कभी भी मंत्री मंडल के कार्य में बाधा न देगा, एक महान् भूल थी। मध्यप्रान्त में पं० मिश्रा द्वारा प्रस्तावित स्थानीय स्वराज्य की नई योजना गवर्नर के विशेषाधिकारों के कारण पास नहीं हो सकी। भविष्य को अभी भी नये रंग दिखाने थे।

परन्तु इस काल का प्रान्तीय शासन बहुत ही सन्तोषजनक रहा। और लोगों की यह धारणा हो चली थी कि नई परम्पराओं की सृष्टि कर तथा राजनैतिक दलों के द्वारा इस एक्ट से भी बड़ी दूर तक सच्ची स्वतन्त्रता या स्वायत्त शासन स्थापित किया जा सकता है। यदि सच्चे शासन की परख लिखित विधान से न होकर उसके शासन कार्य द्वारा की जाती है तब तो

इस काल के शासन को देखकर यही कहा जा सकता है कि १६३५ का एक्ट बहुत अधिक सफल एक्ट रहा है। चारों ओर नयी-नयी योजनाओं को देखकर, जनता की आर्थिक, सामाजिक और शिक्षात्मक उन्नति देखकर लोगों ने यदि यह धारणा बना ली थी तो इसमें कोई भूल न थी। जनता में मंत्रियों का स्वतन्त्रता पूर्वक मिलना देखकर लोगों को प्रथम बार अनुभव हुआ कि यह हमारी ही सरकार है। इधर सरकारी कर्मचारियों को भी हिदायत थी कि वे जनता से नम्रतापूर्वक व्यवहार करें। संयुक्तप्रान्त में घूसबंदी का नया विभाग बनाया गया और पुलिस वा कचहरियों में जो खुल्लमखुल्ला रिश्वत ली जाती थी, बंद कर दी गई।

शासन और धारा सम्बन्धी कार्य भी जनता का हित सामने रखकर ही किये गये हैं। किसी योजना को हाथ में लेने के पूर्व कुशल और दक्ष सदस्यों की कमेटियाँ बनाई गईं और उनकी इस सलाह पर ही नये कानून बनाये गये और शासन कार्य चलाया गया। वर्धा-स्कीम को चलाने वाले ज़ाकिर कमीशन इस क्षेत्र में काफी नाम पा ही चुका है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कांग्रेस मंत्री मंडलों द्वारा बहुत से नये विचार रखे गये वा कई क्षेत्रों में सुधार किये गये।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में किये गये कुछ मुख्य कामों की सूची इस प्रकार है—शिक्षा व्यावहारिक बनाई गई तथा बुनियादी शिक्षा की नींव डाली गई। प्राइमरी शिक्षा को अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया गया और शिक्षा का प्रचार कर पढ़ने वालों की संख्या बढ़ाई गई। मशीन सम्बन्धी शिक्षा का आयोजन हुआ और विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति पर अधिक ध्यान रखा गया। इसी समय कई समाज सुधार हुए जैसे—शराब बन्दी करना, अछूतोद्धार से संबंध रखते हुए मंदिर-प्रवेश प्रस्ताव पास करना तथा हरिजनों की हालत सुधारने के लिए नये प्रयत्न करना।

गाँवों में पानी, चिकित्सा, शिक्षा या अच्छी सड़कों की योजना की गई और स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं का पुनर्निर्माण किया गया। इन संस्थाओं से मनोनीत सदस्य हटा दिये गये और उनकी रचना वा अधिकार में कई संशोधन हुए। लगान से छुटकारा या कम करने की योजनाएँ, काश्तकारी

बिल पास करना, ग्राम-ऋण सुधार, साहूकारों के नियम बनाना, सिंचाई की योजनाएँ, घरेलू धंधों को प्रोत्साहन देना—आदि योजनायें कृषकों की अवस्था सुधारने के लिये हाथ में ली गईं; साथ ही मज़दूरों की दशा सुधारने का भी प्रयत्न किया गया। मज़दूरों की तनख्वाहें बढ़ाई गईं, नये उद्योग बढ़े और मिल मालिक वा मज़दूरों के झगड़ों को निपटाने की योजनाएँ रखी गईं। इस संबंध में यू० पी० में एक लेबर कमिश्नर नियुक्त हुआ।

कांग्रेस के इस व्यापक कार्य तथा उनके उद्देश्य पूर्ति को देखते हुए सभी लोग आश्चर्य करते थे। जैसा सर हेरीहेग ने एक बार लिखा था कि "स्वयं कांग्रेस को भी यह विश्वास न था कि इतने बहुत से अधिकार उसको सौंपे जा रहे हैं।"

प्रान्तीय स्वायत्त शासन का यह स्वर्ण-युग केवल डेढ़ वर्ष के लिए ही था। यूरोप के महायुद्ध का प्रभाव भारत की राजनीति पर पड़ना स्वाभाविक ही था। जर्मनी के विरुद्ध इंग्लैंड द्वारा युद्ध की घोषणा करने पर भारत-सरकार ने भी बिना प्रजा के प्रतिनिधियों की सलाह के युद्ध-घोषणा कर दी, जिसके फलस्वरूप भारत सरकार की नीति का विरोध करते हुये कांग्रेस मंत्री-मंडलों ने नवम्बर १६३६ को अपना स्तीफा दे दिया। कांग्रेस प्रान्तों में केवल आसाम को छोड़कर दूसरे मंत्री मंडलों का बनना कठिन होगया और इस प्रकार बंगाल, सिंध वा पंजाब को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तों में १६३५ का एक्ट हटा दिया गया, और गवर्नर ने ६३ धारा के अनुसार पूरा शासन और धारात्मक अधिकार स्वयं ले लिये। अभी नये चुनावों तक इन प्रान्तों का शासन कुछ सलाहकारों की सहायता से गवर्नर द्वारा हो रहा है।

निराशा

अग्नि से सोने की परख होती है और युद्ध से देश के शासन की। वैधानिक समस्याएँ तो इस काल में उतनी उपस्थित नहीं होती जितनी शासन-सम्बन्धी और विशेषकर वे जिनसे जनता की स्वतन्त्रता और अधिकार सम्बन्धित हैं परन्तु देश का शासन उसके विधान पर आश्रित होता है इस कारण देश की शासन समस्याएँ उसके विधान का नग्न रूप उपस्थित कर सकती हैं। भाषण का अधिकार प्रायः प्रत्येक देश में रहता है, परन्तु यह स्वतन्त्रता वहाँ के शासन-विधान में कितनी पैठ किये है यह युद्ध-काल में ही मालूम हो सकता है। अस्तु। भारत के प्रान्तीय शासन का नग्न-रूप इस युद्ध-काल ने उपस्थित कर ही दिया। और स्वायत्त-शासन के दो वर्षों में जिस आशा ने लोगों के हृदय में अपना घर बना लिया था, वह मरु-मरीचिका ही निकली। सिंध, आसाम, बंगाल और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि स्वायत्त शासन हमारी धारासभा या उत्तरदायी मंत्रियों के लिए नहीं है। यह स्वायत्त शासन है हमारे निरंकुश निरुत्तरदायी गवर्नर और

गवर्नर जनरल के लिये। इसके पूर्व कि हम स्वायत्त शासन के इस इतिहास के पृष्ठ खोलें, हम एक बार फिर से गवर्नर की वैधानिक परिस्थिति पर दृष्टि डाल लेना चाहते हैं। इस पृष्ठभूमि पर ही हम इन युद्ध-कालीन घटनाओं को परख सकेंगे।

पिछले अध्याय में हम कह आये हैं कि असली स्वायत्त-शासन में गवर्नर की वैधानिक स्थिति इंग्लैंड के शासन में सम्राट की स्थिति के समान है। इसमें सन्देह नहीं कि गवर्नर को कुछ विशेषाधिकार और विशेष उत्तरदायित्व दिये गये हैं परन्तु यदि वह चाहे तो भी इन अधिकारों के होते हुए प्रान्तों में सच्चा स्वायत्त शासन स्थापित कर सकता है। कांग्रेस के मंत्री मंडलों के राज्य में तो सभी इस सच्चे स्वायत्त शासन का ही रूप देख रहे थे। श्रीयुत मसानी ने इसी आशा पर अपनी पुस्तक में पूर्ण विश्वास से लिखा था कि विधान में और असलियत में बड़ा फर्क है। यदि इसी तरह से कुछ साल शासन और चला और यदि कुछ वैधानिक परम्परायें प्रारम्भ हो गईं तो गवर्नर के अधिकार एक कोने में सड़ते रह जावेंगे। भारत-सचिव श्री एमरी महोदय ने भी एक बार कहा था कि भारतवर्ष को १६३५ के एक्ट द्वारा संघीय शासन मिला है, जिसके अंतर्गत ११ प्रान्तों में पूर्ण जनसत्तात्मक राज्य है—प्रान्त के सभी विषयों पर जनता का शासन है। मान भी लिया जावे कि गवर्नर को विशेषाधिकार है परन्तु गवर्नर के आदेश-पत्र से तो यह मालूम होता है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का उद्देश्य प्रान्त में कुछ विशेषाधिकारों को छोड़ मंडलीक शासन स्थापित करना था। क्योंकि गवर्नर को यह आदेश था कि गवर्नर उस व्यक्ति की सहायता से मंत्री मंडल चुनेगा जो धारा सभा के स्थायी बहुमत का विश्वासपात्र होगा। गवर्नर अपने विशेषाधिकार से सम्बन्ध रखने वाले विषयों को छोड़कर अन्य विषयों में मंत्रियों की सहायता से काम करेगा। इस आदेशानुसार गवर्नर का एक विश्वासपात्र मंत्री को हटाना अवैधानिक कार्य होगा। इसमें सन्देह नहीं कि गवर्मेंट आफ इंडिया एक्ट १६३५ की (५१) धारा के अनुसार "मंत्री गवर्नर के द्वारा चुने और बुलाये जावेंगे और उन्हें मंत्री मंडल के सदस्य के लिए शपथ लेनी पड़ेगी

और वे गवर्नर की इच्छानुसार अपने पद पर रहेंगे।" परन्तु विधान की यह भाषा क्या इंग्लैंड और उपनिवेशों के शासन विधान में नहीं मिलती ? तब क्या इंग्लैंड का बादशाह स्वेच्छा से अपने प्रधान मंत्री को हटा सकता है ? प्रायः मंत्री धारासभा में अपना बहुमत न देकर स्वयं स्तीफ़ा दे देते हैं। यदि बादशाह स्वेच्छा से मंत्रियों को हटाता है तो उसे नये मंत्री मंडल बनाने के लिये नई धारासभा बुलानी पड़ेगी—क्योंकि पुरानी धारासभा का बहुमत तो हटाये गये मंत्रियों के साथ होगा। यदि इस नये चुनाव में फिर उन पुराने मंत्रियों पर विश्वास करने वाले प्रतिनिधियों को जनता ने नई धारा-सभा में भेजा तब तो सम्राट की परिस्थिति नाजुक हो जावेगी। उस समय जनता और सम्राट में संघर्ष होगा, जिसका परिणाम प्रजातन्त्र राज्य में बादशाह का पद-त्याग ही हो सकता है।

जार्ज तृतीय द्वारा फॉक्स का हटाया जाना और विलियम चतुर्थ द्वारा नार्थ का हटाया जाना बादशाह की स्वेच्छा से नहीं हुआ था। वैधानिक कानून के विशेषज्ञ डायसी के शब्दों में फॉक्स का प्रधान मंत्री के पद से हटाकर बादशाह ने पार्लियामेंट की सत्ता के विरुद्ध जनता की सत्ता को अपील की थी, और लार्ड नार्थ को हटाने में सम्राट ने यह जानने की कोशिश की थी कि कहाँ तक हाउस आफ़ कामन्स जनता की इच्छा का प्रदर्शक है। इन दोनों समय जनता की सत्ता को स्थान दिया गया था सम्राट की स्वेच्छा को नहीं। १७८४ के पश्चात् १८३४ में एक और ऐसा अवसर आया था जब लार्ड मेलबोर्न को पद से हटाया गया था; परन्तु इस पद-च्युत होने में लार्ड मेलबोर्न की भी इच्छा थी। सर राबर्ट पील ने मंत्री पद स्वीकार करके सम्राट का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था और पार्लियामेंट को बरख्वास्त कर दिया था। इस कार्य में भी सम्राट की स्वेच्छा न थी। इसमें भी पार्लियामेंट की सत्ता के विरुद्ध जनसत्ता को अपील थी।

यदि भारतीय प्रान्तों में स्वायत्त शासन है, यदि ब्रिटिश गवर्मेंट का उद्देश्य प्रान्तों में मंडलीक शासन बनाने का है तो क्या गवर्नर ने सिंध और

बंगाल के प्रधान मंत्रियों को हटाकर या आसाम में ९३ धारा लगाकर जनमत की सत्ता स्थापित की है ? यहाँ की घटनाएँ इस प्रकार हैं।

आसाम

दिसम्बर १९४१ में श्री रोहनी कुमार चौधरी के त्यागपत्र से सर मुहम्मद सआदुल्ला का मंत्री मंडल डगमगाने लगा। इस कारण विपक्षी कांग्रेस-दल के नेता श्रीगोपीनाथ बारडोली को गवर्नर ने नया मंत्री मंडल बनाने का काम सौंपा; परन्तु बारडोली ने अपनी असमर्थता प्रगट करते हुए गवर्नर को विश्वास दिलाया कि वे स्वयं तो मंत्री मंडल बनाने में लाचार हैं; परन्तु वे रोहनी-कुमार चौधरी को, जिन्हें उनकी सहायता से बहुमत मिल जावेगा, अपना सहयोग देने को तैयार है। अतएव उन्हें मंत्री मंडल बनाने का काम दिया जावे। साथ ही उन्होंने एक बात और स्पष्ट कर दी कि कांग्रेस के सिद्धान्तानुसार उनका युद्ध-सम्बन्धी मामलों में बहुत कम सहयोग रहेगा। गवर्नर इस बात से सहमत नहीं हुए और उन्होंने ९३ धारा लगाकर प्रान्त का सारा शासन स्वयं अपने हाथ में ले लिया। गवर्नर ने धारा सभा के बहुमत की कुछ भी परवाह नहीं की, क्योंकि यदि वह चाहता तो दूसरा मंत्री मंडल अच्छी तरह कार्य कर सकता था। सिंध का उदाहरण भी आसाम के गवर्नर के सामने था जहाँ अल्ला बक्स का मंत्री मंडल कांग्रेस के सीमित सहयोग पर कार्य कर रहा था। परन्तु आसाम के उदाहरण में हम गवर्नर को भी दोषी नहीं ठहरा सकते; क्योंकि ७ दिसम्बर१९४१ को जापान युद्ध प्रारम्भ हो चुका था और भारत के पूर्वी प्रान्तों को सब से अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता थी। उस समय बारडोली की इस शर्त का कि वे युद्ध-काल में सहयोग न दे सकेंगे, यही परिणाम होता कि आसाम में (जो रण-क्षेत्र के इतने समीप था) उस समय के सब से गम्भीर विषय, युद्ध-कार्य में, वैधानिक बाधाएँ आतीं। प्रान्त और देश-रक्षा की दृष्टि से हम गवर्नर को दोषी नहीं कह सकते। फिर भी आसाम के गवर्नर का कार्य स्वायत्त-शासन वाले प्रान्त के नाममात्री शासक के समान नहीं है। वैधानिक दृष्टि से उसका दोष नहीं भूला जा सकता।

* * *

सिंध—देश में ९ अगस्त १९४२ को विद्रोह की महान् आग भड़क उठी थी और वह जितनी प्रचण्डता से धधकी थी उससे अधिक नृशंसता के साथ उसे बुझाने का प्रयत्न किया गया। सरकार की इस नृशंस नीति से असन्तुष्ट होकर १९४२ के अक्टूबर में सिंध के प्रधान मंत्री अल्लाबक्स ने अपना ख़ान बहादुरी का ख़िताब गवर्नर जनरल को लौटाकर सरकार की दमन-नीति और वैधानिक-गति-विरोध से अपना असन्तोष प्रगट किया। १० अक्टूबर को सिंध के गवर्नर के द्वारा वाइसराय का उत्तर सिंध के प्रधान मंत्री को मिला—"आपको दिये हुए ख़िताबों के बारे में आपका पत्र मिला। अख़बारों को इस ख़बर के बारे में सूचित करने की जल्दबाज़ी और अशिष्टता से मुझे खेद हुआ। आपके पत्र में दी हुई सलाह, जो स्वयं आपकी समझ में बिना किसी नींव की हैं, मैं स्वीकार नहीं कर सकता। हमारे निर्णय से आपके पद पर पड़े हुए प्रभाव के विषय में गवर्नर साहब आपसे स्वयं बात करेंगे।" प्रधान मंत्री के "पद पर पड़े हुए प्रभाव" का विषय केवल यही था कि चूँकि गवर्नर का इन पर कोई विश्वास नहीं है इस कारण वे प्रधान मंत्री के पद से हटाये जाते हैं।

यहाँ एक बात स्मरणीय है कि पंजाब के प्रधान मंत्री सर सिकन्दर हयात ख़ाँ की तरह अल्लाबक्श जी ने राष्ट्रीय रक्षा कौंसिल में काम करना छोड़ा नहीं था, और वे सिंध की राष्ट्रीय युद्ध मोर्चे के सभापति भी रह आये थे। उन्होंने भारत सरकार द्वारा युद्ध और शान्ति वा व्यवस्था संबंधी आदेशों की भी अवहेलना नहीं की थी फिर भी उन्हें पदच्युत कर दिया गया। इससे यही मालूम होता है कि प्रधान मंत्री के पद से हटाने का मुख्य कारण कानूनी या वैधानिक मसला न था। सर ह्यूज डो (सिंध के गवर्नर) ने सर गुलाम हुसेन हिदायतउल्ला को मंत्री मंडल बनाने का काम सौंपा। लार्ड पील के पद स्वीकार करने के पश्चात् जो जनमत जानने के लिये पालियामेंट का फिर से चुनाव हुआ था वैसा कोई चुनाव या जनमत जानने की यहाँ कोशिश नहीं की गई। इसके साथ ही यह कार्य स्वयं गवर्नर का न था गवर्नर जनरल ने इस बार प्रान्तीय मामले में हस्तक्षेप किया था। गवर्नर को तो गवर्नर जनरल के निर्णय

का प्रभाव ही बताना था। प्रान्तीय स्वायत्त शासन में गवर्नर जनरल का हस्तक्षेप किसी भी आधार पर ठीक नहीं कहा जा सकता।

❀ ❀ ❀

बंगाल—स्वायत्त शासन का खोखलापन अभी तक प्रगट नहीं हुआ था। भविष्य के गर्भ में अभी और भी बहुत सी घटनायें छिपी थीं। बंगाल के हरबर्ट महोदय को भी अपना खेल खेलना था। शासन का सर्वोच्च अधिकारी प्रान्त की दलबन्दियों से परे रहता है परन्तु बंगाल के गवर्नर को दलबन्दी में फँसने का दोष अपने ऊपर लेना था और बंगाल के प्रधान मंत्री को खुल्लमखुल्ला यह दोष गवर्नर के सिर पर आरोपित करना था। असेम्बली में बोलते हुए फज़लुलहक़ ने अपने त्याग-पत्र देने की परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए कहा था :—

"जब मैं सर जान हरबर्ट से बातें कर रहा था उस समय मैं भूल गया था कि वे प्रान्त के गवर्नर हैं, पार्टीबंदी वाले सज्जन नहीं—मुझे मालूम पड़ा, और मुझे उस परिस्थिति में लाया गया, और मैंने स्पष्टतः उनसे कह दिया कि वे बंगाल असेम्बली की मुस्लिम लीग पार्टी के मुख्य ह्विप हैं और उनका सच्चा स्थान गवर्मेंट हाउस न होकर बंगाल असेम्बली के मंडल हैं, जहाँ उन्हें स्तीफ़ा देकर लीग पार्टी के साथ बैठना चाहिये।"

प्रधान मंत्री द्वारा बंगाल असेम्बली में बताई गई फज़लुलहक़ और गवर्नर सर जॉन हरबर्ट के संघर्ष की यह बड़ी रोचक कहानी है। डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी और प्रधान मंत्री फज़लुलहक़ द्वारा खुल्लमखुल्ला लगाये गये इन दोषों का उत्तर आज तक सुनने में नहीं आया तब क्या मौनं सम्मति लक्षणम् के अनुसार हम इसे कहानी न समझकर सच्ची ही घटना समझें ? "यदि भारतवर्ष एक स्वतंत्र देश होता और यदि यह असेम्बली एक सत्ताधारी सच्ची पार्लियामेंट होती तो सर जॉन हरबर्ट बहुत पहले भारत के प्रमुख प्रान्त की गवर्नरी छोड़कर मामूली धंधों में अपना कौशल बताने शीतल जलवायु को वापस चले गये होते।" सर जॉन हरबर्ट के प्रधान मंत्री ने प्रान्तीय विधान पर

आलोचना करते हुये गवर्नर की वास्तविक वैधानिक स्थिति को प्रगट किया था।

१९४१ में अपना मंत्री मंडल बनाने के बाद मि० फज़लुलहक़ को कितनी कठिनाइयाँ सामने आईं इसका ज़िक्र करते हुये हक़ महोदय ने असेम्बली में कहा कि "प्रारंभ ही से गवर्नर ने हमारे रास्ते में रोड़े बिछाना शुरू कर दिये। हमारे नित दिन के शासन में हमें इतनी बाधायें उपस्थित होने लगीं कि हमें डर होने लगा कि हम चरम दुर्घटना की ओर बढ़ रहे हैं। २ अगस्त को प्रधान मंत्री ने पत्र लिखा कि परिस्थिति दिन पर दिन ख़राब होती जा रही है। अच्छा हो यदि गवर्नर साहब स्थिति को समझते हुए कार्य करें। गवर्नर महोदय इस प्रश्न पर मौन रहे।"

१९४२ का अगस्त आया। बंबई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और ९ वें दिन से भारतीय विद्रोह प्रारंभ हुआ। इस विद्रोह को अच्छी तरह दबाने का काम बंगाल को भी करना पड़ा। "जनता के प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार करने के लिये और जहाँ विद्रोह अधिक भड़का था, उन क्षेत्रों से सामूहिक फ़ाइन इकट्ठा करने के लिये भारतीय रक्षा कानूनों (Defence of India Rules) का मनमाना उपयोग हुआ। इन गिरफ़्तारियों के बहुत से मामलों में मेरा गवर्नर और पुलिस के दृष्टिकोण से भिन्न मत रहा। बहुत ही थोड़े से मामलों में मेरी सलाह मानी गई परन्तु अन्य प्रत्येक मामले में मेरी बात टाल दी गई। कुछ मामलों में तो मुझे प्रमाण इतना कम मालूम होता था और मैं आश्चर्य प्रगट करता था कि किस तरह पुलिस एक प्रकार से बिना प्रमाण के ही मुझसे गिरफ़्तारी के आर्डर पास करने का आग्रह करती है। इन गिरफ़्तार किये गये व्यक्तियों में से कुछ गत सप्ताह के भीतर ही छूटे हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि वे सब प्रमाण जिन पर वे व्यक्ति गिरफ़्तार किये गये थे और वे सब कारण जिनसे गवर्नर महोदय ने मेरे रिहाई के हुक्मों को रद्द कर दिया था जनता को प्रगट कर दिये जाते। शायद आज के मंत्री मंडल को क्षणिक गौरव देने के लिए ही गवर्नर महोदय इन प्रमुख राजनैतिक क़ैदियों को छोड़ने के लिये तैयार भी हो गये हैं परन्तु जनता इस खेल को समझती है। बहुत से

मामलों में तो अगस्त और सितम्बर के माह में मेरे दिये गये हुक्मों को अमल में नहीं लाया गया था परन्तु आज लेजिस्लेटिव असेम्बली की बैठक शुरू होने के पूर्व कुछ महत्वशाली परिस्थितियों के कारण गवर्नर महोदय उन आज्ञाओं को कार्यान्वित करने को तैयार हो गये हैं।

"सामूहिक ज़ुर्माना के बारे में भी हम लोगों को बड़ी भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कई मामलों में तो ज़ुर्माने की रक़म का साधारण अपराधों से अनुपात ही नहीं बैठाया जा सकता और प्रायः हर एक मामले में अपराधियों की अपेक्षा भोले आदमियों पर अधिक जुर्म ढाया गया। हमेशा की भाँति मेरी कोई सुनवाई न थी। पुलिस का दृष्टिकोण और सरकारी अफ़सरों की सिफ़ारशें ही गवर्नर को मान्य थीं।"

प्रधान मंत्री के त्याग-पत्र की भी बात मजे की है। २८ मार्च को प्रधान मंत्री गवर्नर महोदय द्वारा बुलाये गये और उनसे कहा गया कि चूँकि उन्होंने असेम्बली में सर्वदल मंडल बनाने का अवसर देने के लिये अपना त्याग-पत्र देने की बात कही थी इस कारण वे अपना त्याग-पत्र दे दें। प्रधान मंत्री ने उत्तर दिया कि वे त्याग-पत्र देने को तैयार हैं बशर्ते कि उन्हें यह विश्वास दिया जावे कि बंगाल में सर्वदल मंत्री मंडल बनाया जावेगा। परन्तु गवर्नर महोदय ने बिना ऐसा विश्वास दिये एक टाइप किया हुआ कागज़ निकाला जो प्रधान मंत्री का त्याग-पत्र होने वाला था और उनसे अपने हस्ताक्षर करने को कहा। प्रधान मंत्री ने बहुत सी शासन संबंधी कठिनाइयों का ज़िक्र किया और कहा कि मेरे त्याग-पत्र से बजट के पास होने में बाधा पड़ेगी। गवर्नर फिर भी हस्ताक्षर करने के लिये ज़ोर देता रहा। सोचने के लिए और अपने साथियों से सलाह लेने का समय माँगा गया—तो उसके लिये भी वे तैयार नहीं हुए। प्रधान मंत्री भी अपनी बात पर डटे रहे। तब गवर्नर ने अपना पहलू बदला और प्रधान मंत्री से कहा कि वे उनके त्याग-पत्र को फ़ौरन् अमल में न लावेंगे परन्तु उसे बताकर वे सर्वदल मंत्री मंडल बनाने की योजना लोगों के सामने रख सकेंगे। सर्वदल मंत्री मंडल बनने की आशा पर ही उनके त्याग-पत्र को मंजूर किया जावेगा। इस बात पर हक़ साहिब ने उस पर

हस्ताक्षर कर दिये। परन्तु सर्वदल मंत्री मंडल बनाने की बात केवल एक धोखा थी।

सर निज़ामुद्दीन के मंत्री मंडल पर प्रकाश डालते हुए हक़ महोदय ने कहा—"सर जॉन हरबर्ट को यह भी ध्यान न रहा कि वे निज़ामुद्दीन के मंत्री-मंडल को सहयोग दिलाने के लिए केनवासिंग करते हुये अपने स्थान से नीचे गिर रहे हैं। सर निज़ामुद्दीन को अधिकार देने के लिये उन्हें १३ मंत्रियों, १३ पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी और ४ सरकारी ह्विप नियुक्त करना पड़े जब कि हम लोगों को अपने ८ सदस्यों के मंत्री मंडल को बढ़ाने या १ से अधिक पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बनाने की स्वीकृति नहीं मिलती थी।......दलबंदी में फँसा हुआ गवर्नर अपने पद के उतने ही अयोग्य है जितना दलबन्दी वाला एक न्यायाधीश। दलबन्दी के कारण गवर्नर ने अपने आदेश-पत्र के विरुद्ध काम किया है और इस कारण वह अपने पद से हटाया जा सकता है।" अन्त में हक़ साहिब ने कहा—"मैंने गवर्नर के ऊपर दलबन्दी का दोषारोपण किया है और आदेश-पत्र के विरुद्ध काम करने का अपराधी ठहराया है। गवर्नर के पास अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये और मेरे द्वारा लगाये गये अभियोगों को झूठा साबित करने के साधन हैं। गवर्नर की यह सब कार्यवाही वैधानिक दृष्टि से बहुत महत्वशाली है इस कारण गवर्नर के लिये मौन धारण करना और लोगों को अपने मन चाहे परिणाम निकालना गवर्नर के लिये अच्छा न होगा।"

फ़ज़लुल हक़ के इस भाषण से अधिक महत्वपूर्ण उनका गवर्नर को लिखा गया २ अगस्त १६४२ का पत्र है :—

"इस समय जब कांग्रेस के प्रस्ताव के कारण भारत के भविष्य की महान् चिन्ता ने हम लोगों के हृदयों में हलचल पैदा कर दी है मुझे दुर्भाग्यवश आपको यह पत्र लिखने के लिये विवश होना पड़ रहा है। मेरी इच्छा थी कि मैं इस पत्र-व्यवहार को रोक सकता परन्तु परिस्थितियों ने मेरे लिये कोई चारा नहीं छोड़ा। मुझे यह बात साफ़-साफ़ कहने का भी दुःख है कि जिन परिस्थितियों के कारण मुझे यह क़दम लेने के लिये बाध्य होना पड़ रहा है उन्हें

पैदा करने में आपका कुछ कम भाग नहीं रहा है। आप प्रान्त के गवर्नर हैं और मैं आपका प्रधान मंत्री वा प्रमुख सलाहकार। हम लोगों के आपसी संबंध के कारण हमारे कुछ आपसी कर्तव्य भी हैं। जब भी मैं देखता हूँ कि आप ग़लत रास्ते पर जा रहे हैं उस समय अपनी मित्रवत् परन्तु स्पष्ट सलाह से आपके पथ में हस्तक्षेप करने के उत्तरदायित्व से मैं कभी विमुख नहीं हो सकता हूँ। यदि मैं इन बातों को यूँ ही चलने दूं तो मैं आपके और इस प्रान्त के निवासियों के प्रति कर्तव्य करने में असफल रहूँगा। मुझे विश्वास हो गया है कि अब वह समय आ गया है जब मैं आप से बंगाल की वैधानिक चरम-संकट रोकने के लिये खुले शब्दों में कुछ कहूँ। कई बार मैंने आपको सावधान किया है और आपको बतलाया है कि आप उस नीति का अनुसरण कर रहे हैं जिसका केवल यही परिणाम होगा कि बंगाल के विधान को समाप्त करके, उसे उन अन्य प्रान्तों के समान बना दिया जावे जो ९३ धारा के द्वारा शासित हो रहे हैं। मैंने आपको यह समझाने की कोशिश की कि आप कुछ अफ़सरों की सलाह सुनकर ऐसे कार्य कर रहे हैं जैसे आपके मंत्री हैं ही नहीं और सेक्रेटरी और अन्य स्थायी अफ़सरों से सीधा संबंध रखने में आप स्वतंत्रता से काम कर रहे हैं। मंत्री मंडल का प्रधान होने के नाते मैं आपके इस बर्ताव को यूँ ही नहीं जाने दे सकता हूँ। प्रस्तुत पत्र इन सब बातों को ठीक करने का एक दूसरा और अन्तिम प्रयत्न है और मुझे पूरी आशा है कि इस पत्र का परिणाम अच्छा ही होगा। मैं अपने प्रधान मंत्रित्व को स्थापित करने के दृढ़निश्चय से ही यह लिख रहा हूँ और मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि इसका परिणाम मुझसे प्रधान मंत्री के नाते और आपसे गवर्नर के नाते वैधानिक संघर्ष भी होगा तो भी मैं बिना परिणाम की परवाह किये अपने कर्तव्य करने से विचलित न होऊँगा।

"बृहद् रूप से ऐसी दो प्रकार की परिस्थितियाँ हैं जहाँ मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है, आप वैधानिक गवर्नर की भाँति कार्य करने में असफल रहे हैं। पहिली परिस्थिति में मैं उन सब घटनाओं को रखता हूँ जहाँ मैंने आपका हस्तक्षेप शासन की सूक्ष्मतम बातों तक में पाया है इनमें वे भी घटनायें

सम्मिलित हैं जो एक्ट के अनुसार आपके हस्तक्षेप से क़तई बाहर हैं। थोड़ा सोचने पर आपको स्वयं विश्वास हो जायगा कि यह हस्तक्षेप हम लोगों को कितना ख़राब मालूम होता होगा और एक्ट के द्वारा दिये गये सीमित अधिकारों में आपका दख़ल देना कितना कड़ुवा लगता होगा। ख़ैर, जो भी है एक्ट ही इतना खराब है और इतने अच्छे तरीक़े वाला है कि उसमें अफ़सरों को अधिकार सब है पर उत्तरदायित्व कुछ नहीं और मंत्रियों को उत्तरदायित्व सब है पर अधिकार कुछ नहीं। परन्तु यह पर्दा जो एक्ट में कई जगह दिखता है इतना पतला है कि यह जानना कुछ भी मुश्किल नहीं है कि स्वायत्त शासन की व्यवस्था में मंत्रियों का शासन केवल दिखाऊ है। असली अधिकार अब भी स्थायी अफ़सरों को है। मंत्रियों के अधिकारों का तो एक ख़ासा मज़ाक है और साम्राज्य की नौकरशाही का लोहे का ढाँचा अब भी मज़बूत है और पूरे शासन पर अस्तित्व जमाये है और मंत्रियों के कार्यों पर अपनी उदासीन छाया फेंक रहा है। इस कारण मंत्रियों के इस सीमित अधिकार में थोड़ा भी हस्तक्षेप ठीक नहीं परन्तु मुझे दुःख है कि इस हस्तक्षेप करने में आप ने कोई कमी नहीं रखी। दूसरे वर्ग में हम वे घटनाये रखेंगे जहाँ पर आपने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से बहुत से स्थायी अफसरों को मंत्रियों के अधिकारों को तुच्छ (Contempt) समझने के लिये उत्साहित किया है और इस प्रकार मंत्रियों की अवहेलना करने और आपसे सीधा संबंध स्थापित करने का जाल सा रचा गया है।

"अब मुझे कुछ घटनाओं का उल्लेख करने दीजियेगा। मैं उन थोड़ी-सी कुछ घटनाओं के बारे में पहिले लिखूँगा जहाँ मंत्री के उत्तरदायित्व की रत्ती भर परवाह न करते हुये आपका व्यक्तिगत हस्तक्षेप रहा है। पहिली घटना वह है जब आपने पिछले अप्रेल में चावल हटाने की नीति के विषय में व्यवसाय और मज़दूर विभाग के ज्वाइंट सेक्रेटरी को अपने आदेश दिये थे। यहाँ आपने इस प्रकार काम किया था मानो बंगाल में १९३५ का एक्ट हटा दिया गया हो और आप ९३ की धारा के अनुसार प्रान्त के शासन के सर्वाधिकारी बन बैठे हों। जनता के खाद्य संबंधी महत्वपूर्ण विषय में आपको

अपने मंत्री मंडल की असाधारण बैठक बुलानी चाहिये थी और अपने मंत्रियों से परामर्श लेना था कि किस प्रकार सैनिक अधिकारियों और केन्द्रीय सरकार की इच्छा पूरी हो सकती है। परन्तु आपने ऐसा कोई कार्य नहीं किया। आपने उस विभाग के मंत्री तक को न बुलाया, जब वे बड़ी आसानी से आपसे मिल सकते थे। आप ने बुलाया उसके सहकारी सेक्रेटरी को। आप ने उसे फ़ौरन् चावल हटाने का हुक्म दे दिया बिना इस बात की परवाह किये कि चावल और धान की भिन्न-भिन्न भागों में वास्तविक परिस्थिति क्या है, और किस तरीक़े से और सस्ते दामों में चावल हटाने की योजना अमल में लाई जा सकती है। सहकारी सेक्रेटरी का कथन है कि जब वह आपके हुक्म की तामीली करने के लिये तैयारी कर रहा था आप अधीर हो उठे और आप ने उसे स्पष्ट आदेश दिये कि ३ ज़िलों का बढ़ता चावल २४ घंटों में हटा दिया जावे। उस समय भी आपने अपने मंत्रियों से सलाह नहीं ली क्योंकि शायद आप उन पर विश्वास नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम जहाँ तक इस नीति का संबंध है, असफलता ही रही। सहकारी सेक्रेटरी ने आपको कृतज्ञ करने के लिये अपनी शीघ्रता में अपने दोस्त के बताये हुए व्यक्ति को काम प्रारंभ करने के लिये, बिना किसी शर्त तय हुए या जनता के धन को बरबादी से बचाने का इन्तज़ाम हुए, केवल आपको यह बतलाने के लिये कि काम प्रारंभ हो गया है २० लाख रुपये एडवांस कर दिये। जब हम लोगों को अंत में इसका पता लगा तो हमने इस बुरी परिस्थिति से बचने का भरसक प्रयत्न किया; परन्तु फिर भी हम इस दुष्परिणाम को रोक न सके। इस समय आपके अनचाहे हस्तक्षेप के कारण और सहकारी सेक्रेटरी की जल्दबाज़ी के फल-स्वरूप हम लोगों को बंगाल में चावल के अकाल का सामना करना पड़ रहा है। आपके हुक्म के कारण और ज्वाइंट सेक्रेटरी द्वारा बिना सोचे-समझे हुये दिये गये पहिले एडवांस की भारी रक़म की पूरी वापिसी में हमारे कानूनी सलाहकार सन्देह प्रगट कर रहे हैं। गवर्मेंट को यह बड़ी भारी हानि हुई है और जनता के धन को व्यर्थ बरबाद करने की ज़िम्मेवारी आपके और आपके सहकारी सेक्रेटरी के ऊपर है।

"अब हम नावों के हटाने की नीति के ऊपर आते हैं। इस सिलसिले में अपने मंत्रियों का विश्वास न कर आप कुछ स्थायी अफ़सरों की सलाह और पथ का अनुसरण करते रहे हैं। आपने उस व्यक्ति की भी अवहेलना की जो न केवल आपका प्रधान मंत्री था प्रत्युत आपके गृह-विभाग का भी मंत्री था।......

"अब मैं कुछ शब्द आपके उस व्यवहार पर भी कहना चाहता हूँ जिसके कारण आपने मुझे अपने मंत्री मंडल और पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों के बढ़ाने के प्रयत्नों में सदैव रोका है। एक्ट के अनुसार जो कुछ भी आपके अधिकार हों यह प्रत्यक्ष है कि प्रधान मंत्री के नाते मंत्री मंडल के बनाने और पार्लियामेंट संबंधी नियुक्ति में मुझे पूर्ण अधिकार है। और इन मामलों में, कुछ महान् कारणों को छोड़कर आपको हमारी सलाह नहीं ठुकराना चाहिये। ....आपका रुख़ केवल मेरी इच्छाओं की पूर्ण अवहेलना में रहा है और आपने यह रुख़ केवल सर नज़ीमुद्दीन और उनके दल को मंत्री-मंडल में लेने की ही आशा पर अपनाया है। ८ महीने बीत गये और उनको सहायता देने के आपके सब प्रयत्न विफल हो गये परन्तु मेरी सलाह न मानने की आपकी हठधर्मी का परिणाम बहुत ख़राब हुआ है......

"कुछ दिनों से मैं देख रहा हूँ कि सेक्रेटरी अपनी ज़िम्मेवारी पर या आपकी स्पष्ट या अस्पष्ट स्वीकृति से मंत्रियों की पूर्ण अवहेलना कर आर्डर पास करते जा रहे हैं.......... ....उन मामलों के विषय में जिनका हमें पता भी न हो हमारे ऊपर उत्तरदायित्व लादना हमारे हक़ में बुरा और पूर्ण रूप से अवैधानिक है। हमारी अनजानी में ही नये अफ़सर नियुक्त कर दिये जाते हैं और हम ऐसी परिस्थिति में स्वीकृति देने के लिये बाध्य किये जाते हैं जब कि सिवा स्वीकृति देने के हमारे पास कोई रास्ता ही नहीं रहता। ....

"अब मैं उन घटनाओं का ज़िक्र करता हूँ जहाँ स्थायी अफ़सरों ने मंत्रियों की पूर्ण उपेक्षा करते हुए काम किया है. मुझे इन घटनाओं का प्रारंभ नवखाली ज़िले के कनोवा गाँव में स्त्रियों पर किये गये बलात्कारों

से करना चाहिये। उस समय फेनी में एक डिप्टी कलेक्टर था जो वहाँ का एडिशनल सब-डिवीज़नल-आफ़िसर था। उसने तार द्वारा डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट को वहाँ की घटनाओं से सूचित करते हुए उसके आदेश माँगे। डिप्टी कलेक्टर के इस आचरण से कुछ अफ़सर लोग बिगड़े, शायद यह सोचकर कि यह तार-अपराधी व्यक्तियों के विरुद्ध एक महत्वशाली प्रमाण हो जावेगा। इस अफ़सर का जिसने अपना कर्त्तव्य करने की चेष्टा की थी, स्थानीय अफ़सरों के कहने से चीफ़ सेक्रेटरी ने तार द्वारा फेनी से तबादला कर दिया। चीफ़ सेक्रेटरी ने यह हुक्म बिना मुझसे पूछे जब कि मैं प्रधान मंत्री, और गृहमंत्री हूँ—पास कर दिया। मुझे इस तबादले का पता कई दिन बाद उस समय लगा जब मैं फेनी में बलात्कार की सच्ची घटनाओं की जाँच-पड़ताल करने गया। मैंने इस तबादले के काग़ज़ात देखे। उस फ़ाइल में वह तार न था केवल एक बड़े अफ़सर का यह रिमार्क देखने को मिला कि डिप्टी-कलेक्टर ने बुद्धिमानी से काम नहीं किया......

"क्या मैं इस विषय में आपको याद दिला सकता हूँ कि जब आपको मेरे फेनी जाने के विषय में मालूम हुआ था तो आपने मुझे वहाँ न जाने की सलाह दी थी क्योंकि आपके विचार से मेरा वहाँ जाना वहाँ के स्थानीय अफ़सरों को झंझट में डालेगा। मैंने आपको समझाया था कि मेरी इच्छा किसी को झंझट में डालने की नहीं है। सिर्फ़ मैं उस क्षेत्र में जाना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जहाँ पर लोग इतने दुःखी हों। जब मैं वहाँ गया तो मैंने चिटगाँव डिवीज़न के प्रायः सभी अफ़सरों को घटना-क्षेत्र को मुझे जाने से रोकने के उद्देश्य से वहाँ मौजूद पाया। डिवीज़न के कमिश्नर ने मुझसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि उसे आपके सेक्रेटरी से टेलीफोन द्वारा सूचना मिली है कि वह मुझे वहाँ जाने के विचार को छोड़ने के लिये फुसलावे। मैं उस गाँव को नहीं गया क्योंकि मैं व्यर्थ अफ़सरों से लड़ना नहीं चाहता था परन्तु मैं उन स्त्रियों के कई संबंधियों से जिनके ऊपर बलात्कार हुआ था और जिनके पति मर चुके थे मिला। मेरे पास कई प्रमाण-पत्र भी लाये गये और मुझे फेनी की घटनाओं के बारे में कुछ भी शक न रहा। डिप्टी कलेक्टर का तार द्वारा

तबादला और आपकी वा अन्य अफ़सरों की मुझे जाने से रोकने के लिये चिन्ता करने के कारण बहुत ही स्पष्ट हैं। प्रधान मंत्री तक को इस रास्ते से अलग रखा गया क्योंकि इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता था कि वह अफ़सरों के षड्यंत्र में शामिल होगा। आगे कुछ आलोचना करना व्यर्थ है।" फ़ज़लुलहक़ ने इस पत्र में आगे अन्य घटनाओं का भी ज़िक्र किया और गवर्नर से विनय की कि वह स्वायत्त शासन के शासक के समान ही अपना कार्य करे। फ़ज़लुलहक़ के इस पत्र का न तो जवाब ही आया और न कभी गवर्नर ने ही इस भारी दोषारोपण की चर्चा चलाई।

फ़ज़लुलहक़ ने असेम्बली में एक और बात का ज़िक्र किया था। डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने बंगाल के खोखले शासन के ऊपर अपना वक्तव्य देते हुए १२ फरवरी को अपना त्याग-पत्र दे दिया था। फ़ज़लुलहक़ और उनके साथियों को कहा गया कि वे असेम्बली में अपना वक्तव्य दें कि डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी का दोषारोपण झूठा है और गवर्नर एक वैधानिक शासक के समान काम करता रहा है। हक़ साहब श्यामाप्रसाद मुकर्जी के वक्तव्य से पूर्ण सहमत थे "इस कारण इस प्रकार झूठ बोलना मुझसे न हो सका। यूरोपियन दल मेरे मौन रहने के कारण फरवरी से ही मेरे विरुद्ध हो गया और मेरे खिलाफ़ षड्यंत्र रचता रहा है।"

बंगाल की इस घटना से बंगाल के गवर्नर पर तीन दोषारोपण किये जा सकते हैं—(१) दलबंदी में फँसना (२) प्रान्त के शासन में मंत्रियों की परवाह न करना (३) सरकारी अफ़सरों की सलाह से काम करना वा उनसे सीधा संबंध स्थापित करना। पहले दो दोषों पर उपयुक्त भाषण और पत्र में ही अच्छी आलोचना है। इस कारण हम वैधानिक दृष्टि से तीसरे दोष पर ही विचार करेंगे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इंग्लैंड में प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष मंत्री होता है। सम्राट कभी भी स्थायी अफ़सरों से मंत्रियों के विरुद्ध षड्यंत्र नहीं रचता। बहुत वर्ष पूर्व जब भारत में स्वतंत्र शासन की चर्चा भी न थी प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने एक बार हाउस ऑफ़ कॉमंस में कहा था

कि इंडियन सिविल सर्विस भारतीय शासन का फौलादी ढाँचा है और उन्होंने उस समय स्पष्ट कहा था कि भारतवर्ष को कुछ भी सुधार दे दिये जावें परन्तु यह फौलादी ढाँचा कभी कमज़ोर न किया जावेगा। महायुद्ध के समय की यह नीति १६३५ तक वही रही है। १६३५ के एक्ट द्वारा इंडियन सिविल-सर्विस के सदस्यों को यह अधिकार है कि वे बिना मंत्री को सूचित किये गवर्नर से मिल सकते हैं। ये सदस्य नाममात्र को ही मंत्रियों के अधीनस्थ हैं। इस अधिकार का परिणाम शासन पर क्या हो सकता है यह फ़ज़लुलहक़ के पत्र से मालूम हो सकता है। जिन मंत्रियों ने कुछ स्वतंत्रता से काम लिया है उन मंत्रियों तक को इस इंडियन सिविल सर्विस की शक्ति ने उखाड़ कर फेंक दिया है और जो इसके इशारों पर नाचे हैं वे अपने पद की शोभा बढ़ाते रहे हैं।

दलबंदी के नाम पर तो अभी गवर्नर को और भी काम करने थे। सर निज़ामुद्दीन के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव होते देख एकाएक असेम्बली की बैठक समाप्त करके गवर्नर ने इस दलबंदी का प्रत्यक्ष उदाहरण दिया था। सीमाप्रांत में भी कांग्रेस को जेल के भीतर रखकर अपना मंत्री मंडल चलाते रहना वहाँ के गवर्नर की दलबंदी का नमूना है।

हर्ष की बात है कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में फिर से कांग्रेस मंत्री मंडल काम कर रहा है। पंजाब और सिंध में भी मंत्री मंडल है परन्तु अन्य प्रान्तों में ६३ धारा के अनुसार काम हो रहा है। प्रान्तों में फिर से स्वायत्त शासन स्थापित करने की चर्चा चलने लगी है। मार्च तक चुनाव हो जावेंगे और अप्रेल तक नये मंत्री मंडल काम करने लगेंगे। आज का राजनैतिक वातावरण सहानुभूति और विश्वास से पूर्ण है तब हम आशा कर सकते हैं कि इस युद्ध-काल की अग्नि से तपकर हमारा प्रान्तीय स्वायत्त शासन असली रूप में चमकेगा और हमारे प्रान्त के गवर्नर फिर से अपनी सहृदयता का प्रदर्शन करते हुए प्रान्तों में स्वायत्त शासन का स्वर्ण-युग स्थापित करेंगे। बंबई के गवर्नर कालविली द्वारा दिये गये भाषण से तो स्पष्ट होता है कि गवर्नर भी ६३ वीं धारा के अनुसार काम करते-करते थक गये हैं। उन्हीं के

शब्दों में—"हम अपने शासन का जीवन ६३ वीं धारा के अनुसार काम करते-करते ही समाप्त नहीं कर देना चाहते हैं। हम फिर से उत्तरदायी सरकारकी स्थापना देखना चाहते हैं जहाँ हम वैधानिक शासक की तरह काम कर सकें।"

हमारी जनता भी नौकरशाही के शासन से घबड़ा उठी है। स्वायत्त-शासन के स्वर्ण-युग को देखने के बाद वह इस अन्याय, लूटमार और घूस के वातावरण से असन्तुष्ट है—वह प्रत्येक राजनैतिक समस्या के हल होने के उपाय को बड़ी आशा भरी दृष्टि से देख रही है। हमारे कांग्रेस मंत्रियों को अब अपनी शक्ति का परिचय भी मिल गया है इस कारण हम अच्छी तरह से यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि हमारा यह नया अध्याय हमारे लिये शांति और उन्नति का संदेश लावेगा।

परन्तु हमारे प्रान्तीय शासन-विधान में सुधार करने की आवश्यकता बनी ही हुई है और हमें आशा है कि इस आवश्यकता को हमारी ब्रिटिश सरकार आज नहीं तो कल अवश्य पूरा करेगी।

परिशिष्ट २

स्वायत्त शासन में परम्परायें (Conventions)

शासन एक जीवित संस्था है और उसका विधान केवल एक ढाँचा। नवीन परिस्थितियों में, नई-नई समस्याओं के हल करने में, बाह्य शक्तियों के प्रभाव के कारण, और आंतरिक शक्तियों के संतुलन में शासन अपने विधान की निश्चित सीमा से कभी आगे बढ़ता है, और कभी किसी धारा की उपेक्षा कर उसे मृतप्राय कर देता है। कभी विधान की धाराओं को नवीन अर्थ दिया जाता है और शासन अपने विधान में सृजित रूप से एक भिन्न रूप ग्रहण कर लेता है। शासन विधान में दिये गये रूप और कुछ काल तक कार्यान्वित शासन के वास्तविक रूप में बड़ी भिन्नता आ जाती है। ये भिन्नतायें परम्पराओं द्वारा उत्पन्न होती हैं। इस कारण किसी देश के शासन का अध्ययन केवल उसके शासन-विधान तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। उसका असली रूप जानने के लिये हमें उसकी परम्पराओं को भी ध्यान में रखना पड़ता है। इंग्लैंड के शासन-विधान में मंत्री-मंडल का कहीं नाम तक

नहीं है परन्तु १६८८ से ही इंग्लैंड का शासन मंत्री मंडल द्वारा चल रहा है इस मंत्री मंडल का जन्म, उसका विकास और उसके अधिकार राजनैतिक परम्पराओं के ऊपर आश्रित है। केवल शासन-विधान को पढ़कर इंग्लैंड के शासन को समझना बड़ी भारी भूल होगी। शासन-विधान के अनुसार सम्राट अभी भी सारा राज्य करता है, वह ही युद्ध की घोषणा करता है, संधि करता है, गृह और वैदेशिक शासन का सर्वाधिकारी है आदि-आदि—परन्तु हम जानते हैं कि इंग्लैंड का शासक केवल नाममात्र का शासक है उसके अधिकार कुछ भी नहीं हैं। ये सब अधिकार वास्तव में उसके मंत्री-मंडलों के हैं जिनकी इच्छा को, वह अपने हस्ताक्षर कर पूरी करता रहता है। अमेरिका के शासन-विधान में भी कई परम्परायें उत्पन्न हो गई हैं जिनके कारण उसके विधान में दिये हुए शासन और उसके वास्तविक शासन में काफ़ी अन्तर हो गया है।

हमारे प्रान्तीय शासन का जीवन अल्प कालीन ही था इस कारण यहाँ बहुत सी परम्परायें उत्पन्न नहीं हो पाईं और जो परम्परायें उत्पन्न भी हुईं वे केवल क्षणिक ही हैं या उनका प्रभाव हमारे शासन पर सदैव रहेगा? यह कहना भी इस समय कठिन है। क्योंकि परम्परायें अलिखित होने के कारण उसी समय स्थायी होती हैं जब वे काफ़ी प्राचीन हो जावें। कभी-कभी तो प्राचीन परम्परायें तक नई परम्पराओं के द्वारा हटा दी जाती हैं। अस्तु हमारे प्रान्तीय शासन की परम्परायें बहुत ही थोड़ी हैं। पहिले मंत्री मंडलों की बनावट की ही ओर देखें। मंत्री मंडल की बनावट गवर्नर के आदेश-पत्र से ही स्पष्ट हो सकती है जहाँ गवर्नर को यह आदेश है कि वह इस बात को ध्यान रखकर बहुमत वाले दल के नेता की सलाह से ऐसे व्यक्ति अपने मंत्री मंडल में रखे जिनमें सम्मिलित उत्तरदायित्व रहे। और यह मंत्री-मंडल एक इकाई होकर धारा-सभा का विश्वास-पात्र हो। इसी आदेश-पत्र में गवर्नर को यह भी आदेश है कि वह इन मंत्री मंडलों में अल्पसंख्यकों को जहाँ तक हो सके स्थान देवे। यह शर्त सम्मिलित उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के प्रतिकूल है और इसके कारण बहुमत वाले दल का संगठित मंत्री मंडल नहीं बन सकता है। फिर मंत्री मंडलों का निर्माण नेता और उसके दल का

अन्य दलों के नेताओं के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर है उसमें गवर्नर (वाह्य-शक्ति) का हस्तक्षेप विश्वसनीय मंत्री मंडल के निर्माण में बाधा उपस्थित कर सकती है।

परन्तु गवर्नर ने सदैव ही (सीमाप्रान्त के प्रारंभिक मंत्री मंडल को छोड़कर) बहुमत दल के नेता को बुलाकर उसे मंत्री मंडल बनाने का काम सौंपा है और किसी भी प्रान्त में उसने नेता द्वारा प्रस्तावित नामों में उलट-फेर करने की चेष्टा नहीं की। अल्पसंख्यकों की समस्या भी केवल मध्यप्रान्त में आई, जब वहाँ के मंत्री मंडल से श्री शरीफ़ महोदय ने अपना पद त्याग दिया और वहाँ के मंत्री मंडल ने किसी भी मुसलमान को मंत्री नहीं बनाया। मुस्लिम लीग ने इसकी कड़ी आलोचना की परन्तु गवर्नर ने हस्तक्षेप करने की बात नहीं सोची। उस समय से प्रधान मंत्री को अपने मंत्री मंडल बनाने में पूर्ण स्वतंत्रता देना ही एक परम्परा चल पड़ी है।

प्रधान मंत्री का नाम भी न तो एक्ट में आता है और न आदेश-पत्र में। मज़दूर दल ने हाउस आफ़ कामन्स में यह चाहा भी था कि आदेश-पत्र में प्रधान मंत्री का भी ज़िक्र कर दिया जावे परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसकी नाहीं कर दी। इस नाहीं के होते हुए भी आज हमारे यहाँ "प्रधान मंत्री" शब्द का पूर्ण चलन हो गया है।

प्रधान मंत्री के नेतृत्व में बाधा डालने वाली एक्ट की ५० (२) वीं धारा है जिसके कारण गवर्नर अपने स्वतंत्र अधिकार में मंत्री मंडलों की बैठक में सभापति का स्थान ग्रहण कर सकता है। आशा यह की जाती थी कि गवर्नर इंगलैंड के सम्राट की तरह इस धारा की उपेक्षा करेंगे और इन बैठकों में सम्मिलित न होवेंगे। उस समय आपसे ही आप प्रधान मंत्री बैठक का भी प्रधान रहा करेगा। परन्तु गवर्नर बराबर इन बैठकों में आते ही रहे। उनके सामने मंत्रियों का पारस्परिक मतभेद होना मंडलीक शासनों के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। मंत्रियों को अपने शासक के सामने पूर्ण संगठित रूप में ही जाना चाहिये इस कारण अनियमित (Informal) बैठकों का सिलसिला चल गया जिनमें मंत्री भिन्न-भिन्न विषयों पर पूर्ण विकास के बाद एकमत पर पहुँच

जाते हैं। इसी मत को वे नियमित बैठकों में गवर्नर के सामने रखा करते हैं। ये अनियमित बैठकें भी शासन की स्वाभाविक कार्य-पद्धति में शामिल हो गई हैं।

प्रान्तीय शासन-काल में विधान के बाहर एक नई बाह्यशक्ति का भी जन्म हुआ है जिसने प्रान्तीय शासन में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया है। यह बाह्य शक्ति देश के राजनैतिक दलों की पार्लियामेंटरी कमेटी या हाई कमांड है। कांग्रेस हाई कमांड का काम बड़ा महत्वशाली रहा है। मंत्री मंडलों के मंत्री न तो गवर्नर को ही उत्तरदायी हैं, न प्रधान मंत्री को, और न धारा-सभा को—वे वास्तव में अपने दल को उत्तर-दायी हैं। मध्यप्रान्त की खरे-घटना में कांग्रेस का प्रभुत्व देखने को मिला था। डाक्टर खरे के प्रधान मंत्री बनने पर उनकी नीति से असेम्बली के कांग्रेस-दल में प्रारंभ से क्षोभ बढ़ने लगा। १६३८ की मई में खरे मंत्री मंडल के चार मंत्रियों ने अपना स्तीफ़ा दे दिया परन्तु बाद में मध्यप्रान्तीय असेम्बली के दल द्वारा यह तय हुआ कि डा० खरे बिना किसी विभाग के अध्यक्ष रहे प्रधान-मंत्री रहें। असेम्बली का यह निर्णय गुप्त रखा गया था और यह प्रगट किया गया था कि मंत्रियों के आपसी झगड़े सब सुलझ गये और मंत्री एक साथ काम करने को तैयार हो गये हैं। असेम्बली का निर्णय डाक्टर खरे के हठ के कारण कार्यान्वित न हो सका और १८ जुलाई को डाक्टर खरे ने अपने तीन विरोधी मंत्रियों को लिखा कि क्या वे प्रधान मंत्री के स्तीफा देने पर मंडलीक शासन की परम्परानुसार अपना त्याग-पत्र भी देंगे। इन तीन में से दो मंत्रियों का उत्तर था कि कांग्रेस की कार्यकारिणी कुछ दिनों में मिलने वाली है और हम उस दल को दिये हुए वचन से बाध्य हैं अतएव हम बिना कांग्रेस-कार्य-कारिणी की आज्ञा के अपना त्याग-पत्र नहीं दे सकते। २० तारीख़ को डाक्टर खरे ने स्तीफा दे दिया। उसी दिन गवर्नर ने इन तीनों मंत्रियों को बुलाया परन्तु इनका वही उत्तर था कि वे बिना कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के आदेश के अपना स्तीफ़ा नहीं दे सकते। शाम को इन तीनों मंत्रियों ने गवर्नर को पत्र लिखा जिसके ये अंश महत्वपूर्ण हैं :—

"जैसा हमने आज दोपहर को आपको बतलाया था कि हमारा पहिला

कर्तव्य कांग्रेस और जहाँ-जहाँ कांग्रेस मंत्री मंडल है वहाँ के मंत्री मंडलों की धारात्मक कार्यवाही को संचालित करने वाली कांग्रेस की संस्था को है। हम लोगों ने कांग्रेस के कहने से काम प्रारंभ किया था और उसी के आदेश से काम कर रहे हैं। यद्यपि हम इस परम्परा का महत्व समझते हैं कि प्रधान-मंत्री के साथियों को उसकी आज्ञानुसार स्तीफ़ा दे देना चाहिये फिर भी हम यही कहना चाहते हैं कि हमने जो उत्तरदायित्व कांग्रेस के स्पष्ट आदेश के कारण लिया है उसे हम स्वतंत्रता पूर्वक एक तरफ़ नहीं टाल सकते।"

बाद में डाक्टर खरे ने फिर अपना दूसरा मंत्री मंडल बनाया परन्तु दूसरे ही दिन उन्हें अपना पद त्याग करना पड़ा। त्याग-पत्र में लिखा था :—

"अपने पद त्याग और नये मंत्री मंडल बनाने के समय से ही मुझे कांग्रेस के प्रेसीडेंट और कांग्रेस-पार्लियामेंटरी-सब-कमेटी के सलाह लेने का मौका मिला है। इस सलाह के फल-स्वरूप मुझे यह ज्ञात हुआ कि अपना स्तीफ़ा देने और नये मंत्री मंडल बनाने में हमने जल्दबाज़ी की और सोचने में भूल की। इस कारण मैं अपना और अपने साथियों का त्याग-पत्र भेज रहा हूँ।"

कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने पं० रविशंकर शुक्ल को नया नेता बनाया और २६ जुलाई को उनके प्रधान मंत्रित्व में दूसरा मंत्री मंडल बन गया।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी की प्रभुता इस घटना से मालूम हो सकती है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस के मंत्री अपने निर्वाचकों तक को उत्तरदायी नहीं रहे। परन्तु यह भूल न होना चाहिये क्योंकि कांग्रेस ही वास्तव में निर्वाचकों की प्रतिनिधित्व करती है। डाक्टर खरे या अन्य कोई सदस्य इसलिये धारा-सभा का सदस्य है कि उसे कांग्रेस ने खड़ा किया है—वह अपने व्यक्तिगत रूप से सदस्य नहीं हो सकता। इस रूप में यह कहना ठीक न होगा कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने निर्वाचकों के हक़ को भी छीन लिया।

मध्य प्रान्त के श्री शरीफ़ का भी स्तीफ़ा कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की आज्ञानुसार हुआ था।

कांग्रेस दल की इस प्रभुता ने सभी कांग्रेस मंत्री मंडल वाले प्रान्तों को एक ही नीति में बाँध दिया था। इस कारण वे गवर्नर जनरल के विरुद्ध तक

राजनैतिक बंदियों के मामले में बड़ी सफलता से खड़े हो सके।

इधर लीग ने भी बंगाल, सिंध में अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न बराबर किया है। लीग को कुछ-कुछ सफलता भी मिली है परन्तु उतनी नहीं जितनी कांग्रेस को। इसका सब से बड़ा कारण प्रान्तीय धारा-सभा में लीग के प्रभुत्व की कमी है। अप्रेल १६४४ को तो पंजाब में लीग को अपने मुँह की खानी पड़ी थी।

यहाँ दो बातें स्पीकर के विषय में और कह देना ठीक होगा। इंग्लैंड में हाउस आफ कामन्स का स्पीकर इस पद पर आते ही अपनी दलबन्दी छोड़ देता है और वह निष्पक्ष हो कामन्स की कार्यवाही करता रहता है। अमेरिका और फ्रांस में स्पीकर अपनी दलबंदी नहीं छोड़ते—वे अपने दल के लोगों को अधिक सहूलियतें देते हैं और उनका निर्णय पक्षपात रहित नहीं होता इस कारण इंग्लैंड के स्पीकर दलों के बहुमत बदलने पर बदलते नहीं; परन्तु अमेरिका और फ्रांस में स्पीकर भिन्न-भिन्न दलों के बहुमत बदलने पर बदलते रहते हैं। भारतीय प्रान्तों के स्पीकर के विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, पुरुषोत्तदास टंडन जी का यह वक्तव्य महत्वशाली है कि "मैं असेम्बली की बैठकों में पूर्ण निष्पक्ष रूप से काम करूँगा परन्तु बाहर मैं कांग्रेस का सदस्य हूँ और कांग्रेस का सदस्य रहूँगा।" अन्य प्रान्तों के स्पीकर भी किसी दलबंदी में फँसे नहीं सुने गये। आगे की बातें भविष्य के गर्भ में हैं।

परिशिष्ट (३)

कार्य विभाजन

प्रत्येक संघ राज्य में संघ सरकार और उसके अंगों का कार्यक्षेत्र निश्चित करने के लिये शासन संबंधी विषयों का विभाजन शासन विधान द्वारा कर दिया जाता है। इस संबंध में दो मुख्य सिद्धान्त हैं :—

(१) कुछ संघ राज्यों में संघ राज्य का कार्यक्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है और शेष विषय संघातरित राज्यों के आधीन छोड़ दिये जाते हैं, जैसा संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया और स्विटज़रलैंड में है। (२) कुछ संघ राज्य में संघातरित राज्यों का कार्यक्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है और शेष विषय संघ के आधीन छोड़ दिये जाते हैं जैसा कनेडा में। परंतु इनमें से कोई सिद्धान्त भारतवर्ष में लागू नहीं हो सका है। भारतीय सिद्धान्त को समझाते हुए सर सेमुअल होर ने हाउस आफ कामन्स में कहा था कि "यदि एक ही सूची बनाना संभव हो सकता तो हम लोगों को बड़ी खुशी होती, परंतु दुर्भाग्य वश, अन्य भारतीय समस्याओं के समान, जब हम अपनी

इच्छा को कार्यान्वित करने को उतारू हुए तो हमें यह बात असंभव दिखी। हमें मालूम हुआ कि इस विषय में भारतीय विचारों में निश्चित मतभेद है साधारणतः हिन्दू केन्द्र को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं और मुसलमान प्रान्तों को......हिन्दुओं की दरख्वास्त (Demand) थी कि अवशिष्ट विषय केन्द्र को दिये जावें और मुसलमान भी उतने ही ज़ोर से दरख्वास्त कर रहे थे कि अवशिष्ट विषय प्रान्तों को दिये जावें" इस कारण १९३५ के एक्ट में तीन सूचियाँ बनाई गई हैं (१) संघीय सूची इसमें पूरे भारत से संबंध रखने वाले विषय रखे गये हैं। इन विषयों पर केवल संघीय धारासभा ही नियम बना सकती हैं और ये संघीय सरकार द्वारा शासित होते हैं। (२) प्रान्तीय विषयों की सूची शासन के स्थानीय विषयों से संबंध रखती है और इन विषयों पर साधारणतः प्रान्तीय धारासभा ही नियम बनाती है। भीषण संकट के समय (युद्ध या विद्रोह के अवसर पर) गवर्नर जनरल के कहने पर, या दो या अधिक प्रान्तों की धारा सभा की विनय पर संघीय धारा सभा भी इन विषयों पर नियम बना सकती है। चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों के लिये जहाँ धारा सभायें नहीं हैं संघीय धारा सभा ही नियम बनाती है। इन परिस्थितियों को छोड़ कर प्रान्तीय विषयों पर प्रान्तीय सरकार और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का पूर्ण अधिकार होता है। (३) संयुक्त या सम्मिलित विषय सूची में वे विषय रखे गये हैं जिनके शासन या नियमों में देश भर में एक सी नीति का होना आवश्यक तो है परन्तु जिनमें स्थानीय परिस्थितियों के कारण थोड़ी बहुत भिन्नता भी हो सकती हैं। इन विषयों में संघीय और प्रान्तीय दोनों धारा सभाओं को नियम बनाने का अधिकार है परन्तु यदि कोई प्रान्तीय नियम या उसकी कोई धारा संघीय नियम से असंगत होता है तो प्रान्तीय नियम या वह धारा हटा दी जाती है। परंतु यदि ऐसा असंगत नियम गवर्नर जनरल या सम्राट के विचार के लिये सुरक्षित हो उनकी स्वीकृति पा चुका है तो विरोधी होते हुये भी वह नियम उस प्रान्त में लागू रहता है। सम्मिलित सूची के विषय हमेशा संघ और उसके अंगों में झगड़े की जड़ रहा करते हैं इस कारण कुछ विद्वानों का मत है कि सम्मिलित सूची, जहाँ तक संभव हो,

रखना ही नहीं चाहिये। भारतवर्ष की सम्मिलित सूची में ३६ विषय रखे गये हैं गोलमेज़ परिषदों और ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी में इन विषयों के ऊपर बड़ा विवाद हुआ था वास्तव में सम्मिलित सूची के सब विषय प्रायः प्रान्तीय हैं परन्तु जो सम्मिलित सूची में केवल इसीलिये रखे गये हैं कि पूरे भारतवर्ष में इन विषयों के शासन में एक सी नीति हो। (४) जहाँ तक संभव होता है प्रायः सभी शासन विषय उपर्युक्त तीन सूचियों में रख दिये जाते हैं परन्तु पूर्ण सतर्कता रखते हुए भी कुछ शासन विषय छूट सकते हैं या कोई विषय जो अभी महत्व का न हो आगे चल कर महत्वशाली बन जा सकता है। इन सब विषयों को अवशिष्ट विषय कह सकते हैं। इन विषयों के संबंध में गवर्नर जनरल अपने स्वतंत्र अधिकार से निर्णय कर जनता को सूचना देगा कि कौन सा विषय संघ द्वारा शासित होगा और कौनसा प्रान्त द्वारा।

ये भिन्न २ सूचियाँ इस प्रकार हैं:—

(अ) संघीय विषयों की सूची:—

(१) प्रान्तीय सशस्त्र पुलिस और देशी राज्यों की फ़ौज को छोड़ कर समस्त जल थल और नभ सेना (२) फ़ौजी छावनियां और फ़ौजी कारबार (३) पर-राष्ट्र-संबंध (४) ईसाई धर्म और यूरोपियन क़ब्रिस्तान (५) मुद्रा वा टकसाल (६) संघीय सार्वजनिक ऋण (७) डाक तार, टेलीफोन आदि (८) संघीय नौकरियाँ, संघीय पब्लिक सर्विस कमीशन (९) संघीय आय से दी जाने वाली पेंशनें; (१०) संघीय सम्पत्ति, निर्माण कार्य ज़मीन वा इमारतें (११) संघीय आर्थिक सहायता पाने वाली इम्पीरियल लाइब्रेरी, विक्टोरिया मेमोरियल आदि (१२) अन्वेषण वा उद्योग संबंधी या विशेष-विषय अध्ययनार्थ संस्थायें (१३) काशी और अलीगढ़ के विश्वविद्यालय (१४) भूगर्भ विद्या, वनस्पति शास्त्र वा जन्तुशास्त्र संबंधी सिंहावलोकन (१५) पुरानी ऐतिहासिक इमारतें (१६) मर्दुम शुमारी (१७) देश में आने जाने वाले विदेशी वा भारत के बाहर तीर्थ करने वालों के नियमादि (१८) बंदरगाह के अस्पताल (१९) आयात निर्यात

आवागमन संबंधी

(२०) संघीय रेलवे (२१) जहाज़ी कारबार (२२) प्रमुख बंदरगाह (२३) देशीय जल सीमा के बाहर मछलियों का शिकार (२४) हवाई जहाज या हवाई अड्डे (२५) लाइट हाउस (२६) जल और वायुयान द्वारा मुसाफिरों का सामान का लाना जाना।

व्यवसाय संबंधी

(२७) कापीराइट (२८) चेक आदि (२९) युद्ध की सामग्री (३०) विस्फोटक पदार्थ (३१) निर्यात के लिये अफ़ीम उत्पादन (३२) पेट्रोल (३३) कारपोरेशन (३४) उद्योग धंधों की उन्नति (३५) खान और तेल के कुओं में काम करने वाले मज़दूरों की रक्षा (३६) खान, तेल के कुएं और खनिज़ पदार्थ (३७) इंस्योरेंस (३८) बैंक।

शासन संबंधी

(३९) ब्रिटिश भारत के किसी क्षेत्र की पुलिस के अधिकारों का किसी दूसरे गवर्नर या चीफ़ कमिश्नर के प्रान्तों में उनकी आज्ञा से प्रसार (४०) संघीय धारा सभाओं के चुनाव (४१) संघीय मंत्रियों और व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों के वेतन भत्ते आदि (४२) इस सूची में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में किये गये अपराध (४३) संघीय सूची के विषय सम्बन्धी जाँच और तत्सम्बन्धी आंकड़े।

अर्थ संबंधी

(४४) आयात निर्यात कर (४५) पीने वाली शराब, अफ़ीम और शराब मिश्रित दवाइयों या शृङ्गार की सामग्री को छोड़कर, भारत में बनने वाली तम्बाकू और अन्य प्रकार की चीज़ों का टैक्स (४६) कारपोरेशन टैक्स (४७) नमक (४८) सरकारी लाटरी (४९) विदेशियों को नागरिक बनाने का अधिकार (५०) ठीक तौल की व्यवस्था (५१) अन्तर्प्रान्तीय आवागमन (५२)

रांची स्थित यूरोपियन पागलों का अस्पताल (५३) इस सूची से संबधित विषयों में संघीय न्यायालय को छोड़, अन्य न्यायालयों के अधिकार और एक्ट के नवें भाग में दी गई सीमा तक संघीय न्यायालयों के अधिकारों का प्रसार (५४) कृषि संबंधी आय को छोड़ अन्य सभी प्रकार का आय कर (५५) कृषि भूमि संबंधी पूँजी को छोड़ व्यक्तिगत वा कम्पनियों की पूँजी पर कर (५६) कृषि भूमि को छोड़ अन्य सम्पत्ति का उत्तराधिकार कर (५७) व्यवसाय संबंधी कागज़ातों पर लगने वाले स्टाम्प टिकटों की दर (५८) रेल वा वायु द्वारा लाये गये सामान वा मुसाफ़िरों पर चुंगी (५९) न्यायालयों की फ़ीस छोड़कर इस सूची में दिये गये विषयों से संबंधित फ़ीस

दूसरी सूची

प्रान्तीय विषय

(१) सेना को छोड़ कर सार्वजनिक शान्ति, संघीय न्यायालयों को छोड़ कर अन्य न्यायालयों का संगठन और उनकी फ़ीस, सार्वजनिक शान्ति के लिये नज़रबन्दी और नज़र बन्दियों की देख भाल (२) संघीय न्यायालय को छोड़ कर अन्य न्यायालयों का इस सूची के विषयों में निर्णय देने का अधिकार और माली (Revenue) अदालतों की कार्य पद्धत्ति (३) पुलिस, मय रेलवे वा ग्राम पुलिस के (४) जेल, सुधार गृह आदि (५) प्रान्त का सार्वजनिक ऋण (६) प्रान्तीय नौकरियाँ और प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन (७) प्रान्तीय आय से दी जाने वाली पेंशनें (८) प्रान्तीय सरकार के आधीन भूमि, इमारतें और निर्माण कार्य (९) ज़बरन भूमि पर अधिकार करना (१०) प्रान्तीय सरकार के आधीन पुस्तकालय और अजायबघर (११) प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का निर्वाचन (१२) प्रान्तीय मंत्रियों द्वारा सभा के अध्यक्षों वा उपाध्यक्षों और सदस्यों का वेतन और भत्ते आदि (१३) स्थानीय स्वराज्य की संस्थायें (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, अस्पताल, जीवन मरण का लेखा (१५) तीर्थ स्थान (१६) क़ब्रिस्तान (१७) शिक्षा (१८) आवागमन के साधन

(१६) आबपासी, सड़कें, पुल, घाट आदि नहर, बाँध आदि (२०) कृषि, कृषि शिक्षा, अन्वेषण, पशु चिकित्सा और कांजी हाउस (२१) भूमि पर अधिकार, लगान की व्यवस्था, और ज़मीदारों और किसानों का परस्पर संबंध, कोर्ट आफ वार्ड्स (२२) जंगल (२३) संघीय अधिकारों को छोड़कर खान और तेल के कुओं का नियंत्रण (२४) मछलियों का शिकार (२५) जंगली पशु पक्षियों की रक्षा (२६) गैस और गैस के कारखाने (२७) प्रान्तीय वाणिज्य व्यवसाय, मेले, बाज़ार और महाजनी (२८) सराँय (२६) माल का उत्पादन और वितरण और संघीय अधिकारों के अन्तर्गत् उद्योग-धंधों की वृद्धि (३०) खाद्य पदार्थों में मिलावट, तौल और माप (३१) अफ़ीम को छोड़कर शराब और अन्य मादक द्रव्यों का उत्पादन वा क्रय विक्रय (३२) बेकारों और ग़रीबों की सहायता (३३) संघीय सूची में दिये कारपोरेशन के अलावा दूसरे कारपोरेशन (३४) दान और दान देने वाली संस्थायें (३५) सिनेमा और नाटक घर, अन्य कारपोरेशन का नियंत्रण आदि, धार्मिक, साहित्यक और वैज्ञानिक संस्थायें; सहकारी समितियाँ (३६) जुआ और सट्टे बाज़ी (३७) प्रान्तीय विषयों संबंधी अपराध (३८) प्रान्तीय विषयों सम्बन्धी जाँच और तत्सम्बन्धी आंकड़े।

प्रान्तीय अर्थ

(३६) लगान (४०) आबकारी, शराब, गाँजा और मादक वस्तु मिश्रित दवाइयों और शृङ्गार वस्तुओं पर टैक्स (४१) कृषि सम्बन्धी आय पर टैक्स (४२) भूमि या इमारतों पर टैक्स (४३) कृषि भूमि का उत्तराधिकार टैक्स (४४) खनिज पदार्थों पर टैक्स (४५) व्यक्ति कर (capitation tax) (४६) व्यापार और पेशों पर लगने वाला टैक्स (४७) पशुओं और किश्तियों पर टैक्स (४८) सामान के बेचने वा विज्ञापन पर टैक्स (४६) चुङ्गी (५०) खेल तमाशों, जुआ वा सट्टों पर टैक्स (५१) संघीय सूची में दिये गये कागज़ातों के अलावा अन्य कागज़ातों पर स्टाम्प (५२) जलमार्ग कर (५३) मार्ग कर (५४) न्यायालयों की फ़ीस छोड़कर इस सूची के विषयों पर फ़ीस।

सूची तीसरी

सम्मिलित विषय

भाग १

(१) फ़ौजदारी कानून (२) फ़ौजदारी कार्य पद्धति (३) बंदियों और अपराधियों का एक प्रान्त अथवा संघातरित अंग से दूसरे प्रान्त अथवा अंग में भेजा जाना (४) दीवानी कार्य पद्धति; किसी प्रान्त के टैक्स अथवा मालगुज़ारी का वह भाग जो प्रान्त के बाहर वसूल किया जाता है (५) गवाही वा शपथ तथा न्याय-कार्य पद्धति (६) विवाह वा तलाक़; (७) कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य प्रकार की वसीयतें और उत्तराधिकार (८) कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के माल का अधिकार परिवर्तन और दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री (९) ट्रस्ट और उनके ट्रस्टी (१०) कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के इक़रारनामें (११) समझौता (arbi tiation) (१२) दिवाला (१३) पहिली और दूसरी सूची में सम्मिलित अपराधों को छोड़ कर अन्य अपराध जिन पर कार्यवाही हो सकती हो (१४) इस सूची के सम्बन्ध रखने वाले विषयों में संघीय न्यायालय के अधिकार छोड़ कर अन्य अदालतों के अधिकार वा कार्य क्षेत्र (१५) स्टाम्प (१६) वकालत डाक्टरी वा अन्य पेशे (१७) समाचार पत्र पत्रिकायें और छापाख़ाने (१८) पागलख़ाने (१९) विष और विषैले पदार्थ (२०) मशीन से चलने वाली सवारियाँ (२१) भाफ़ की मशीनें (boilers) (२२) पशु निर्दयता निवारण (२३) यूरोपियनों की घुमक्कड़ बाजी (Vagrancy) (२४) इस सूची सम्बन्धी जांच और तत्सम्बन्धी आँकड़े (२५) न्यायालयों की फ़ीस छोड़ कर सम्मिलित विषयों पर फ़ीस।

भाग २

(२६) कारख़ाने (२७) मज़दूरों की दशा सुधार सम्बन्धी नियम (२८) बेकारी का बीमा (२९) ट्रेड यूनियन (मजदूर संघ) उद्योग धंधों और मज़दूरों

के झगड़े (३०) छुतही बीमारियों की रोक (३१) बिजली (३२) आंतरिक जलमार्ग में चलने वाले जहाज़ सम्बन्धी नियम (३३) सिनेमा के फ़िल्मों की मंजूरी (३४) वे मनुष्य जो संघ द्वारा नज़रबन्द किये गये हैं (३५) इस सूची सम्बन्धी जांच वा तत्सम्बन्धी आंकड़े (३६) अदालतों की फ़ीस छोड़कर इन विषयों पर फ़ीस।

इस कार्य विभाजन के साथ एक्ट में उन विषयों की भी सूची दी गई है जिन पर न तो संघ राज्य को अधिकार है और न प्रान्तों को। कुछ विषय ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति आवश्यक है।

प्रान्तीय स्वायत्त शासन

प्रो० राजेश्वरप्रसाद अर्गल, एम्० ए०
क्राइस्ट चर्च कालेज
कानपुर

अपने

प्रान्त के निवासियों

को